रास-लीला : एक परिचय

रास-लीला : एक परिचय

सम्पादक
गोविन्ददास
राम नारायण अग्रवाल

१९५९

प्रकाशक
भारतीय विश्व प्रकाशन
फव्वारा — दिल्ली

रास-लीला : एक परिचय

सम्पादक
गोविन्ददास
राम नारायण अग्रवाल

१९५९

प्रकाशक
भारतीय विश्व प्रकाशन
फव्वारा — दिल्ली

भूमिका

भारत के उन नाट्य-रगमंचो में जो प्राचीन युग से आज तक जीवित हैं और जिन्होंने इस देश की कला और सस्कृति के साथ-साथ विदेशी दर्शकों को भी प्रभावित किया है, रास रंगमच का महत्वपूर्ण स्थान है। कदाचित् रास-लीलाओं का रगमच ही संसार का सबसे प्राचीन खुला रगमच (Open Air stage) है, जो देश और काल की परपरागत विभिन्न परिस्थितियों से प्रभावित होकर भी नृत्य और नाट्य-क्षेत्र मे अपना विशिष्ट स्थान रखता हुआ अद्यावधि वर्त्तमान है। रास-लीला का यह मच स्वय रास-रसेश्वर भगवान् श्री कृष्ण के नाम के साथ सवद्ध था, इस कारण यह मच केवल व्रज-क्षेत्र मे ही नहीं वरन् समस्त देश मे ही लोकप्रिय रहा।

साहित्य-क्षेत्र पर भी रास का व्यापक प्रभाव पडा है। सस्कृत-साहित्य मे तो रास के वर्णन प्रमुख रूप से हुए ही हैं, पभ्र श भाषाओं मे भी 'रासक' के विवरण मुनि जिनविजय जी को शोध मे मिले हैं। जयदेव कृत 'गीत गोविन्दम्'— जो स्वय रास-लीला से सवद्ध ग्रथ ही माना जायगा—की परपरा मे मैथिल-कोकिल विद्यापति और चंडीदास ने भी रास का विस्तृत वर्णन किया है। यही नहीं वगला के 'व्रज-बुलि' साहित्य मे तथा 'गुजराती साहित्य की रास परपरा' मे भी रास-लीला के वर्णन भरे हुए हैं। दक्षिण-भारत की तामिल आदि भाषाओं मे भगवान् कृष्ण द्वारा वाल्यावस्था मे नृत्यित 'अल्लियाम' और 'कुरुवई' आदि जिन नृत्यों के वर्णन हुए हैं वे भी सभवत रास-लीला के ही उपाग थे। इस प्रकार रास रगमच की मान्यता देश व्यापी रही है। रास-लीलाओं के वर्णन अब तक न जाने कितने हो चुके हैं, और कितने भविष्य मे और होंगे, क्या कहा जा सकता है? व्रजभाषा का रास सवंधी साहित्य तो है ही अक्षुण्ण। व्रजभाषा साहित्य में भगवान् श्र कृष्ण के शरद् कालीन रास का विशद् वर्णन हुआ है, जवकि विद्यापति आदि ने उनके 'वसत-रास' को अधिक महत्त्व दिया है।

कला के क्षेत्र मे भी रास का महत्व सर्वमान्य है। नृत्यकला, चित्रकला और मूर्तिकला पर रास नृत्यों का व्यापक प्रभाव पाया जाता है। रास के अनेक प्राचीन चित्र आज भी इस देश के विभिन्न स्थलों पर उपलब्ध हैं जिनमे से भारतीय कला-भवन, काशी मे उपलब्ध एक चित्र हम श्री राय कृष्णदासजी के सौजन्य से प्राप्त करके इस ग्रथ में भी प्रकाशित कर रहे हैं।

इस प्रकार रास का यह रगमंच हमारी संस्कृति, साहित्य, नाट्य और कला को व्रज-क्षेत्र की एक महत्वपूर्ण देन है, परन्तु रास की इतनी महत्ता होते हुए भी हिन्दी में इस विषय पर कोई ग्रथ न होना एक वडी कमी थी, जिसकी पूर्ति का एक सक्षिप्त प्रयास इस ग्रथ के प्रकाशन द्वारा किया गया है। रास के इतिहास, उसके संगीत, नाट्य-रूप तथा उसकी कलात्मक व्यापकता और सस्कृत तथा व्रज-साहित्य मे

उपलब्ध तत्सबधी विवरणों के साथ-साथ सक्षेप मे हमने रास-लीला के प्राचीन और वर्तमान रूप का परिचय भी उपस्थित करने की चेष्टा की है। साथ ही रास का लौकिक के अतिरिक्त जो आध्यात्मिक रूप है, उसका भी परिचय इस ग्रंथ में उपलब्ध है।

इस प्रकार यह ग्रथ रास-लीलाओ के इस प्राचीन रगमच पर एक महत्वपूर्ण परिचय ग्रथ है, जिसमे साहित्य, संगीत और कलाक्षेत्र के अधिकारी विद्वानों ने शोध-पूर्ण मौलिक निबध लिख कर रास-लीला सम्बन्धी सामग्री प्रस्तुत की है, जिसके लिए हम सभी लेखकों के आभारी हैं। यह ग्रथ आकार मे छोटा होते हुए भी सामग्री की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

आज स्वतत्र भारत मे जब हम अन्य प्रकार की भौतिक प्रगति के लिए प्रयत्न-शील हैं तब अपनी सस्कृति और कलात्मक पुनर्जागरण के प्रति भी अधिक समय तक उदासीन नहीं रह सकते। दुर्भाग्य की बात है कि हमारा रास-लीला का यह रगमच जो कभी कलात्मक आकर्षण का केन्द्र था आज अपने उस महत्वपूर्ण स्थान से च्युत होकर केवल धार्मिक आधार पर ही जीवित है। उसका कलापक्ष विकृत हो गया है इसलिए रास को भी आज युग के अनुरूप पुनर्संस्कार और नव-जीवन की आवश्यकता है। व्रज-साहित्य-मडल रास-लीलाओं के इस पुनर्गठन के लिए विशेष रूप से प्रयत्नशील है। हमारी हार्दिक इच्छा है कि व्रज-क्षेत्र के कलाकार, और रासधारी भी इस ओर विशेष ध्यान दें। यदि यह ग्रथ सगीत, अभिनय प्रेमियों और कलाकारों को रास-रगमच के पुरातन गौरव की झाँकी कराकर उन्हें वर्तमान रास के पुनर्गठन की प्रेरणा दे सका तो ये स्वय अपने आप मे एक महत्वपूर्ण पग होगा।

हमे आशा है कि हमारा यह प्रयास हिन्दी जगत, नाट्य-कला-प्रेमियों और रास-लीला के वैष्णव-भक्तों सभी के लिए रुचिकर प्रतीत होगा और वे इसका स्वागत करेंगे।

विनीत

गोविन्ददास

राम नारायण अग्रवाल

सूची

: १ :

रास के उदय और विकास का संक्षिप्त इतिहास

श्री राम नारायण अग्रवाल, आकाशवाणी, नई दिल्ली

'रास' शब्द की व्युत्पत्ति—रास-लीला के इतिहास पर दृष्टिपात करने के पूर्व हम इन नृत्यो का नाम 'रास' क्यो पडा, इस पर विचार करना चाहते है। 'रास' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे विद्वानो के अनेक मत है। डॉ० ककड के अनुसार 'रास' का अर्थ है, 'नृत्य के बीच मे जोर से चिल्ला उठने की ध्वनि', और उक्त डॉ० महोदय के अनुसार इसी आधार पर इन नृत्यो को 'रास' कहा जाता है। चिल्लाने की यह प्रवृत्ति, जैसा कि डॉ० ककड़ का मत है, आज भी आदिवासियो के नृत्यो मे देखी जाती है, परन्तु हम उक्त डॉ० महोदय के इस मत से सहमत नही, क्योकि रास मे नृत्य के बीच मे अनायास भावोद्रेक मे चिल्ला उठने का कोई विधान या ऐसी परम्परा नही मिलती। रास का नृत्य और सगीत आदिवासियो के नृत्यो से सर्वथा भिन्न है। लोक-जीवन मे घुल-मिल जाने और उनसे प्रभावित होते हुए भी, रास के नृत्य केवल लोक-नृत्य नही। उनकी आधार-भूमि शास्त्रीय नृत्यो पर ही आधारित है। दूसरा मत डॉ० दशरथ ओझा का है। वे लिखते है—

"रास शब्द सस्कृत भाषा का नहीं है, प्रत्युत देशी भाषा का है जो सस्कृत बन गया और देशी नाट्य-कला को, जो रास के नाम से प्रसिद्ध था, रास के नाम से ही संस्कृत ग्रन्थों मे उद्धृत कर दिया है। रास के देशीय होने का अनुमान इस बात से भी होता है कि 'रासो' और 'रासक' नाम से राजस्थानी मे भी इसका प्रयोग मिलता है और वह रास, जिसका विशेष सम्बन्ध गोपियों से है, ग्वालों में प्रचलित कोई देशीय नाटक हो सकता है जो सस्कृत नाटक से अपहृत नहीं माना जा सकता।"[१]

कहने की आवश्यकता नही कि ओझा जी का यह मत भी नितान्त भ्रामक है, क्योकि राजस्थान मे आज रास के लिए जो 'रासक' शब्द प्रचलित है वह राजस्थानी का मूल शब्द नही, वरन् सस्कृत से ही देशी भाषा मे आया है। ईसा की प्रथम शताब्दी मे ही 'नाट्य-शास्त्र' के आदि आचार्य भरत मुनि ने 'रासक' का उल्लेख 'उपरूपको' मे किया है जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

ऐसी दशा मे रास की व्युत्पत्ति को समझने के लिए हमे साहित्यकारो की अटकलबाजी पर अवलंबित न रह कर 'रसानां समूहो रास.' मत ही अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

---

[१] देखिये हिन्दी नाटक उद्भव और विकास, पृष्ठ ७५-७६।

भारतीय काव्य मे शृंगार रस को 'रसराज' का पद दिया गया है और शृंगार-रस के देवता भगवान् श्री कृष्ण स्वीकार किये गये है। ऐसी दशा मे रसिक शिरोमणि द्वारा नाचे गये नृत्य को रास कहकर हमारे साहित्यकारो ने सचमुच बहुत उचित ही काम किया है।[1] भगवान् श्री कृष्ण के नृत्य मे ब्रज बालाओ ने केवल शृंगार-रस के सर्वोत्कृष्ट पावन रूप की प्रत्यक्षानुभूति ही नही की, वरन् ब्रज-वासियो के हृदय मे भी नट-नागर मन मोहन के ये नृत्य नाना प्रकार के स्थायी और सचारी भावो का उद्रेक प्राय करते थे। अत विविध रसो और भाव-अनुभावो से युक्त नट-नागर भगवान् श्री कृष्ण द्वारा नाचे गये ये नृत्य रास कहे गये; "रस-निष्पत्ति की परिपूर्णता के कारण इन्हें रास कहा गया" हमारे विचार से यही मत युक्ति-युक्त है।

रासक और रास—भरत मुनि के 'नाट्य-शास्त्र' और पुराण-ग्रन्थो से ज्ञात होता है कि प्राचीन समय से ही हमारे देश मे रास नृत्यो का प्रचलन था। ईसा की प्रथम शताब्दी मे भरत मुनि ने अपने 'नाट्य-शास्त्र' मे नाटक के 'रूपरूपको' मे जिस 'रासक' का उल्लेख किया है वह वर्त्तमान रास का ही पूर्व-रूप था, क्योकि भरत मुनि ने 'रासक' के जो तीन भेद बतलाये है वे इस प्रकार है—

"ताल रासक नामस्यात् च त्रेधा रासकस्मृतम्।
दड रासमेकतु तथा मण्डल रासकम्॥"

इस श्लोक से प्रगट होता है कि भरत मुनि के समय तक 'रासक-नृत्य' के तीन रूप थे—

(१) **ताल रासक**—इस नृत्य मे लय प्रधान थी, समूह मे निश्चित तालो पर बल देकर नृत्य करना ही 'ताल रासक' था।

(२) **दड रासक**—इस रासक का कही-कही 'लकुट रासक' नाम से भी उल्लेख है।[2] इसमे नृत्यकर्त्ता हाथ मे लकडी के बने हुए डडे या लकुट लेकर उन्हें बजाते हुए नृत्य करते थे। लकडी के डडे बजाकर नृत्य करने की यह प्रथा अहीर जाति मे, जिसमे कि भगवान् गोपाल कृष्ण का लालन-पालन हुआ था, बडी लोकप्रिय थी, आज तक भी वह परम्परा ब्रज के अहीरो मे प्रचलित है और डडो पर उनका यह नृत्य ब्रज के लोक-नृत्यो मे महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

(३) **मण्डल रासक**—रास का तीसरा रूप 'मण्डल रासक' है, जिसमे स्त्री और पुरुष गोलाकार वृत्त बनाकर समूह नृत्य करते थे। रास नृत्यो में सबसे अधिक प्रधानता इसी नृत्य को प्राप्त हुई।

अब यदि हम ब्रज के वर्त्तमान रास की इस 'रासक' से तुलना करें तो हमें ज्ञात होता है कि ब्रज के वर्त्तमान रास के रगमच पर होने वाले नृत्यो मे भरत मुनि द्वारा

---

१. रास की यह व्याख्या उसके लौकिक रूप के ही अनुसार है। उसके दार्शनिक रूप की व्याख्या के लिए देखिये इसी ग्रन्थ में अन्यत्र प्रकाशित डॉ० विजयेन्द्र स्नातक का लेख।

२ जिन दत्त सूरि ने 'लकुट रासक' का उल्लेख किया है, उन्होंने इस रासक को देखना मर्ज्य लिखा है। 'महादेश रास' ग्रन्थ में 'दण्ट रासक' करने वाली जाति नर्तक कही गई है।

कथित रासक के तीनो ही रूपो का सुन्दर समन्वय है। ऐसी दशा मे रास और रासक दो अलग वस्तुएँ हैं, यह नही कहा जा सकता, क्योकि भक्ति-युग मे पुराने 'रासक' के आधार पर ही वर्त्तमान रास का रूप खड़ा किया गया है। हमारे विचार से भरत मुनि के युग का रासक ही भाषा-विज्ञान मे कथित उच्चारण के 'मुख-सुख' की सुविधा के नियमानुसार ही, रास हो गया है। साथ ही, जैसा कि दशरथ ओझा ने लिखा है, राजस्थान मे रास के लिए आज भी 'रासक' शब्द प्रचलित है, इससे भी हमारे उक्त विचार की ही पुष्टि होती है।

रास और हल्लीसक—भरत मुनि ने अपने नाट्य-शास्त्र मे रासक के अतिरिक्त एक और नृत्य का भी उल्लेख किया है, जो 'मण्डल-रासक' से मिलता-जुलता है। उन्होने इस नृत्य को "हल्लीश" कहा है। हल्लीश, हल्लीशक या हल्लीसक नृत्य का उल्लेख प्राचीन अन्य ग्रन्थो मे भी मिलता है, और अजता की गुफाओ मे भी इस नृत्य का एक चित्र उपलब्ध है, परन्तु इस नृत्य मे तथा रासक के मण्डलाकार नृत्यो में क्या भेद था, इसका स्पष्ट उल्लेख भरत मुनि ने नही किया।

कुछ विद्वानो ने हल्लीसक नृत्य के प्राचीन विवरणो को देखकर यह अनुमान लगाया है कि हल्लीसक नृत्य कदाचित् रास का पूर्व रूप है।[1] परन्तु हमारे विचार से यह मत ठीक नही है, क्योकि भरत मुनि के 'नाट्य-शास्त्र' मे 'रासक' का उल्लेख प्रमुख रूप से और 'हल्लीश' का गौण रूप से हुआ है। यदि हल्लीसक नृत्य ही रास या 'रासक' का जनक होता तो भरत जी उसे अवश्य ही 'रासक' से अधिक महत्त्व देते।

यही नहीं, भरत के बाद वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र मे लिखा है, कि—

"हल्लीशक क्रीड़नकैर्गायनैर्नाट्य रासकं ॥"

इस प्रकार वात्स्यायन के अनुसार हल्लीसक नृत्य 'नाट्य-रासक' से भिन्न नही था। सम्भवत वात्स्यायन ने किसी गीत विशेष के साथ गाये जाने के कारण ही रास के इस रूप हल्लीसक को 'नाट्य-रासक' कहा हो। वात्स्यायन के टीकाकार यशोधर ने इस तथ्य को और अधिक स्पष्ट करते हुए लिखा है—

"मण्डलेन च यत्स्त्रीणा, नृत्य हल्लीसकं तु तत्।
नेता तत्र भवदेको, गोपस्त्रीणा यथा हरि. ॥"

इस व्याख्या से स्पष्ट है कि नारियो के समूह मे मण्डलाकार नृत्य ही हल्लीसक नृत्य है, परन्तु उसमे नेता (पुरुष) एक ही होता है जैसे कि गोपागनाओ मे भगवान् श्री कृष्ण। ऐसा प्रतीत होता है कि 'मण्डल-रासक' मे चाहे जितने स्त्री-पुरुष समूह मे नृत्य कर सकने के लिए स्वतन्त्र कर दिये गये थे, किन्तु हल्लीसक नृत्य मे स्त्रियो के मध्य मे केवल एक ही पुरुष के नृत्य का विधान रहा होगा, और इसी आधार पर हल्लीसक नृत्य और 'मण्डल-रासक' अलग-अलग कुछ समय तक अस्तित्त्व मे रहे होगे, किन्तु हल्लीसक नृत्य और 'मण्डल-रासक' नौवी शताब्दी तक या इससे पहले से ही घुल-

---

१. देखिये 'ब्रज को लोक-संस्कृति', पृष्ठ १४२, प० कृष्णदत्त वाजपेयी का लेख 'ब्रज की कला'।

मिल गये थे। 'नाट्य-शास्त्र' के टीकाकार अभिनव गुप्त ने इसका संकेत करते हुए कहा है—

"मण्डलेनतु यन्नाट्य हल्लीसकमिति स्मृतम् ।"

यही नही, पुराण-ग्रन्थो मे सबसे प्राचीन और ऐतिहासिक दृष्टि से अधिक प्रमाणिक हरिवश पुराण के द्वितीय पर्व के बीसवें अध्याय का नाम भी "हल्लीसक क्रीड़न" है जिसमे भगवान् श्री कृष्ण के साथ शरद-ज्योत्सना मे रास का भव्य वर्णन है।[1]

इससे यह स्पष्ट है कि रास और हल्लीसक नृत्य दोनो मे कोई मूलभूत भेद नही था और इन नृत्यो की परम्परा अत्यधिक प्राचीन है जो इस देश मे बहुत लोकप्रिय हुई। यही परम्परा बाद मे भक्ति-युग मे नव्य-भव्य रूप मे पुनर्गठित हुई और आज तक जीवित है।

रास-लीलाओं का आरम्भ—रास को अभिनीति करने की यह परम्परा कब आरम्भ हुई इस सम्बन्ध मे श्रीमद्भागवत की एक कथा उल्लेखनीय है। श्रीमद्भागवत मे उल्लेख है कि शरद् निशा मे यमुना-पुलिन पर भगवान् श्री कृष्ण ने रास का आयोजन किया।[2]

परन्तु रास के बीच मे ही भगवान् श्री कृष्ण को अन्तर्ध्यान हो जाना पड़ा, क्योकि गोपियो को यह अभिमान हो गया था कि भगवान् श्री कृष्ण उनके वश मे हो गये है। परन्तु भगवान् के अन्तर्ध्यान होते ही गोपियो का अभिमान चूर्ण हो गया और वे उनके विरह मे अत्यन्त कातर होकर यमुना तट पर आई। स्वय भगवान् श्री कृष्ण की व्रज-लीलाओ का अभिनय करके उन्होंने श्री कृष्ण के सान्निध्य का अनुभव किया और उन्हें प्रसन्न कर पुन प्राप्त किया। इसके उपरान्त स्वय भगवान् ने यमुना-पुलिन पर उन्हें रास-रस का आस्वादन कराया।

इस कथा से ज्ञात होता है कि व्रज मे रास का जो वर्त्तमान रग-मच है इसके दो पृथक्-पृथक् भाग क्यो है? रास का प्रथम भाग जो केवल नृत्य, गायन और वादन से ही सम्बन्ध रखता है, और जिसे 'नित्य-रास' कहा जाता है स्वय भगवान कृष्ण द्वारा स्थापित है। वे ही इस रास के आदि-प्रणेता है, परन्तु रास का जो दूसरा भाग है, जिसमे भगवान् कृष्ण के जीवन की लीलायें अभिनीत होती हैं उसका आरम्भ व्रज-गोपियो ने किया था। भगवान् कृष्ण के वियोग मे उनकी लीलाओ के अभिनय द्वारा गोपियो ने स्वय भगवान् कृष्ण का सान्निध्य अनुभव किया था, अत भगवान् कृष्ण की

---

१ "कृष्णन्तु यौवन दृष्ट्वा, निशि चन्द्रमसोवनम् ।
शारदीं च निशा रम्या, मनश्चक्रे रति प्रति ॥" इत्यादि

२ "रासोत्सव सम्प्रवृत्तो गोपीमण्डलमण्डित ।
योगेश्वर कृष्णेन तासा मध्ये द्वयोर्द्वयो ।
प्रविष्टेन गृहीतान कण्ठे स्वनिकट स्त्रिय ॥"

लीलाओ के अभिनय (अनुकरण) की आदि आरम्भकर्त्ता स्वय व्रजागनाये हैं। सम्भवत इसी लिये श्रीधर स्वामी जी ने कहा था—

"रासो नाम बहुनर्त्तकीयुक्तो नृत्य विशेष ।"

ऐसी दशा मे हमारे देश मे रास का रगमच उतना ही प्राचीन है, जितना स्वय श्री कृष्ण भगवान् का व्रज-लीला युग। परन्तु क्योकि अभी निर्विवाद रूप से भगवान् कृष्ण के काल का निर्णय नहीं हो पाया है, अतः हम यहाँ यही कहना उचित समझते है कि रास-लीलाओ के अभिनय का श्री गणेश व्रज मे भगवान् कृष्ण के युग मे ही कस-वध से पूर्व हो गया था जो बाद मे सर्वत्र लोक-प्रिय हुआ।

रास-लीला की व्यापक लोक-प्रियता— भारतीय सस्कृति एक धर्मप्राण सस्कृति है, जिसमे 'वासुदेव' की उपासना अत्यधिक महत्त्वपूर्ण रही है। यही कारण है कि भगवान् कृष्ण के सम्बन्ध से रास-लीला का इस सम्पूर्ण देश मे व्यापक प्रचार हुआ। गुजरात के 'गर्वा नृत्य' पर रास की स्पष्ट छाप आज भी विद्यमान है। सूरत के निकट के ग्रामो में मोर पख बाँध कर देवी के समक्ष जो नृत्य किया जाता है उसे 'घेरया रास' कहा जाता है। यही नही, प्राचीन समय मे भी व्रजेत्तर भारत मे रास-लीलाओ के आयोजनो के अनेक विवरण उपलब्ध है।

कहा जाता है कि १५वी शताब्दी के प्रसिद्ध कृष्ण-भक्त नरसी मेहता ने एक बार भगवान् कृष्ण की रास-लीला का दर्शन किया था। वे हाथ मे मशाल लिये लीला देख रहे थे। रास के दर्शन मे वे ऐसे तल्लीन हुए कि उनका हाथ ही जल गया। हमारे एक अमरीकन मित्र डॉ० नारविन हाइन ने लगभग १० वर्ष पूर्व (जो अमरीका से भारत आये थे, और लगभग २ वर्ष तक रास-लीला व उत्तर भारत की लोकवार्त्ता का अध्ययन करते रहे थे, चलते समय) हमे अमरीका मे छपी पुस्तक के एक चित्र की प्रतिलिपि भेंट की थी, जिसमे किसी मरहठा नरेश के दरबार मे रास-लीला का प्रदर्शन चित्रित है। उस चित्र मे रास-लीला की वेश-भूषा आधुनिक वेश-भूषा से भिन्न है।

मणिपुरी नृत्य और रास-लीला—यही नही, वर्त्तमान मणिपुरी नृत्य का आधार भी रास ही माना जाता है। इस सम्बन्ध में एक रोचक किवदती इस प्रकार है—

"एक बार भगवान् शिव-शकर ने अपने यहाँ रास का आयोजन किया। रास आरम्भ होने पर किसी प्रकार नृत्य के घुँघरूओ की ध्वनि पार्वती जी ने सुन ली। उन्होंने रास से लौटकर आने पर महादेव जी से स्वय भी रास-लीला दिखाने का अनुरोध किया। महादेव जी ने पार्वती जी की इच्छा भगवान् श्री कृष्ण को सुनाई, परन्तु वे पुन रास करने को तैयार न हुए। पार्वती जी हट पकड गई तब उनका अत्यन्त आग्रह होने पर भगवान् कृष्ण ने शकर जी को पुन किसी ऐसे स्थल पर रास आयोजित करने की अनुमति दे दी जो अत्यन्त ही गुप्त हो। बडी चेष्टा करके शकर जी ने एक ऐसा स्थल खोजा और देवताओ, गधर्व और अप्सराओ को रास मे सम्मिलित होने के निमन्त्रण भेज दिये। निमन्त्रण पाते ही नन्दी मृदग लेकर, ब्रह्मा शख लेकर और इन्द्र वेणु लेकर रास के लिए आ पहुँचे। नागराज ने इस अधकार पूर्ण स्थल को

अपनी मणियो से आलोकित कर दिया और गधर्वों व अप्सराओ ने अपना स्वर्गीय सगीत गाया। इस प्रकार यह नृत्य सात दिन और सात रात निरन्तर चला। बाद मे नृत्य की यह परम्परा ही 'मणिपुरी नृत्य' कहलाई।"

कत्थक नृत्य और रास— यही नही, कत्थक नृत्य का भी उदय रास से ही माना जाता है। कत्थक नृत्य का पुराना नाम ही, 'नटवरी नृत्य' है। नटवरी नृत्य का अर्थ है नटवर (भगवान् श्री कृष्ण) द्वारा नाचा गया नृत्य। यही नही, रास के वर्तमान नृत्यो और कत्थक नृत्यो का मूल भी एक ही है और उनके नृत्य भी एक जैसे ही हैं। अन्तर केवल यही है कि रास के नृत्य लोक-जीवन मे घुल-मिल गये है, जबकि कत्थक नृत्यो का आधार शास्त्रीय है।

भारतीय साहित्य और रास—रास-नृत्यो की लोक-प्रियता का दूसरा बड़ा साक्षी भारतीय साहित्य है। जयदेव का गीत-गोविंद, विद्यापति और चडीदास की पदावली तथा हिन्दी व ब्रजभाषा का समस्त साहित्य तो रास के वर्णनो से परिपूर्ण है ही, साथ ही बगाल का 'ब्रज-बुलि' साहित्य तथा दक्षिण की भाषाओ के साहित्य मे भी रास के बडे भव्य वर्णन मिलते है। प्राचीन गुजराती साहित्य मे तो रास की एक साहित्यिक परम्परा का ही उल्लेख, श्री कन्हैयालाल माणिक लाल मुशी ने अपने ग्रन्थ "गुजराती एण्ड इट्स लिटरेचर" मे किया है।

रास के नर्त्तक नट—इस प्रकार रास के ये नृत्य प्राचीन समय मे बहुत लोक-प्रिय रहे। ऐसा प्रतीत होता है कि नट जाति का रास के इन नृत्यो से विशेष सम्बन्ध हो गया था और अपभ्रंश काल तक आते-आते ये नट लोग रास-नृत्यो में पारगत हो गये थे। सस्कृत के बाद अपभ्रंश साहित्य की पूरी खोज अभी नही हो पाई, अन्यथा रास के सम्बन्ध मे और भी महत्त्वपूर्ण तथ्य सामने आते, किन्तु मुनि जिन विजय जी को 'सदेश रासक' नामक ग्रन्थ खोज मे मिला है।[1] उसमे एक विरहिणी व एक पथिक के सदेश के कुछ अनुवाद श्री ओझा जी ने दिये है। उसका एक अश इस प्रकार है—

"विरहिणी—आप कहाँ से आ रहे हैं, कहाँ जायेंगे ? पथिक—भद्रे, मैं उस शाम्बपुर से आ रहा हूँ जहाँ भ्रमण करते हुए स्थान-स्थान पर प्रकृति के मधुर गान सुनाई पडते हैं। वेदज्ञ वेद की व्याख्या करते हैं, कहीं-कहीं रासकों का अभिनय नटों द्वारा किया जाता है।"

इस ग्रन्थ से जहाँ रासको की जीवित परम्परा का पता लगता है वहाँ रास नृत्यो से नट जाति के सम्बन्ध का भी पता लगता है। हमारा अनुमान है कि अपभ्रंश-काल से हिन्दी के भक्ति-युग तक रास पर नटो का आधिपत्य अक्षुण्ण रहा, परन्तु बाद मे नटो के हाथो रास का स्वरूप कदाचित् बिगड गया। इस सम्बन्ध मे श्री जीव गोस्वामी का यह कथन दृष्टव्य है—

"नर्तगृंहीतकण्ठीना, अन्योन्यात्तर काश्रियाम्।
नर्त्तकीनाम् भवेद्रासो मण्डलीभूप नर्त्तनम्॥"

---

१ देखिये 'साहित्य सदेश' सितम्बर १९५८ में श्याम परमार का लेख 'रास-लीला'।

अर्थात् "नट लोग नर्त्तकी-युग्म समूहो के कठों मे हाथ डाल कर नर्त्तकी गणो के साथ मण्डलाकार जो नृत्य करते है उसी को रास कहते है।"

इस विवरण से प्रतीत होता है कि भक्ति-काल तक आते-आते रास का यह रूप अधिक शृगारिक हो गया और उसमे उन रसिक भक्तो की आध्यात्मिक भावनाओ को सन्तुष्ट करने की सामर्थ्य न रही, जो सगुण कृष्ण-भक्ति के रस-सागर मे निमग्न होने, व्रज और वृन्दावन की ओर लपक पडे थे। भगवान् श्याम सुन्दर के प्रत्यक्ष दर्शनो के लिए अथवा उनकी बाल-लीलाओ की प्रत्यक्ष अनुभूति के लिए ये भक्त आतुर थे। यही कारण है कि व्रज मे एक बार पुन रास-लीलाओ के पुनर्गठन की तैयारी हुई जिसकी चर्चा आगे की जायगी।

रास नृत्यों का ह्रास—भक्ति-युग के बाद भी परम्परागत नटो के इस रास का पुराना रूप बिगड़ता ही गया ऐसा प्रतीत होता है। रास या इसके बाद 'रहस' के नाम से ये कामुक शृगारिक-नृत्यो की परम्परा व्रज के भक्ति-युग मे निर्मित रास के मच से पृथक्, बाद में भी चलती रही। कहा जाता है कि अवध के नवाब वाजिद अली शाह के यहाँ भी इस प्रकार के कुछ 'रहसकार' थे, जिनके साथ वह 'रहस' खेलता था। उनके अभिनय के लिए उसने केसर बाग मे एक 'रहस-खाना' भी बनवाया था।[1] परन्तु बाद मे जब हाथरस और आगरा मे 'भगत' या 'स्वाँग' की परम्परा से एक नया रगमच स्थापित हुआ तो व्रज क्षेत्र मे छिछली शृगारिकता की यह वृत्ति उस मच के साथ एकाकार हो गई, और रास का भक्ति-युग मे सस्कृत पावन रूप अलग अक्षुण्ण रहा आया। यह दूसरी बात है कि अभी भी कही-कही भगत या स्वाँग की इन मण्डलियो को कभी-कभी रास या 'रहस' मण्डली के नाम से पुकारा जाता है। यह भ्रम केवल इसलिए बना है कि कुछ स्वाँग-मण्डलियो ने अभी भी अश्लील स्वाँगो से पूर्व राधा-कृष्ण की झाँकी सजाकर आरम्भ मे रास-नृत्य करने की प्रथा बना रखी है। परन्तु वास्तव मे वे रास-मण्डली नही, वरन् 'स्वाँग-मण्डली' ही है।

रास के वर्त्तमान रगमच का उदय—प्राचीन रास-लीलाओ के उक्त विवेचन के उपरान्त अब हम भक्ति-युग मे हुए रास-पुनर्गठन की चर्चा करना चाहते हैं। वर्त्तमान रास का यह रगमच कब स्थापित हुआ, इसका लिखित विवरण कहीं उपलब्ध नही होता। हाँ, व्रज के पुराने रासधारी स्वामी राधा कृष्ण दास के ग्रन्थ 'रास सर्वस्व' से, जो अब अप्राप्य है, इस सम्बन्ध मे कुछ अपूर्ण सूचनाएँ अवश्य मिलती है।

वर्त्तमान रास-लीला के रगमच की स्थापना मे महाप्रभु वल्लभाचार्य, स्वामी हरिदास, महाप्रभु हित हरिवश आदि महानुभावो का प्रमुख हाथ था यह कहा जाता है। साथ ही व्रज के रासधारियो मे एक अनुश्रुति भी इस सम्बन्ध मे प्रचलित है। कहा जाता है कि वर्त्तमान रास के रगमच की स्थापना महाप्रभु वल्लभाचार्य और स्वामी हरिदास जी ने मथुरा के विश्रान्त घाट पर की थी। उनके द्वारा मथुरा के चतुर्वेदी ब्राह्मणो से आठ बालक माँगे गये और उन्ही को सिखलाकर रास का आरम्भ

---

१ देखिये 'साहित्यकार' वर्ष २, अक १६, पृष्ठ ६५ पर श्री कृष्ण दास का लेख।

किया गया। कहा जाता है कि उसी समय आकाश से एक मुकुट उतरा और वह भगवान् श्री कृष्ण के स्वरूप को धारण कराया गया। परन्तु महारास मे भगवान् कृष्ण के अन्तर्ध्यान का प्रसग आने पर कृष्ण बनने वाला बालक अन्तर्ध्यान हो गया और बाद मे गोपी बने हुए शेष बालक भी कृष्ण को ढूँढते हुए अन्तर्ध्यान हो गये। इस प्रकार वे सभी बालक सशरीर भगवान् श्री कृष्ण की 'नित्य-लीला' मे प्राप्त हो गये। इस पर बालको के परिवार के लोगो ने बडा उपद्रव किया। तब महाप्रभु जी ने उन बालको के सगे-सम्बन्धियो को श्री यमुना जी मे डुबकी लगाने का आदेश दिया। ऐसा होने पर सबने यमुना जी मे अपने बालको को भगवान् के साथ 'नित्य-लीला' मे निमग्न देखा। इस प्रकार बालको के माता-पिता तो शान्त हो गये, परन्तु वह रास अधूरा ही रह गया।[1] उधर गाँव करहला मे घमण्ड देव नामक एक साधु कदम खण्डी मे निवास करते थे और भगवान् कृष्ण के प्रत्यक्ष दर्शनो को बडे लालायित थे। वे नित्य सरोवर से मिट्टी लेकर उससे भगवान् कृष्ण की विविध लीलाओ की झाँकियाँ बनाते थे और दिन भर लीला-रस मे निमग्न रह कर उन मूर्त्तियो को साय-काल कुण्ड मे ही विसर्जित कर देते थे।

कहा जाता है कि प्रथम रास के असफल हो जाने पर महाप्रभु और स्वामी जी ने इन्ही श्री घमण्ड देव जी को रास का आयोजन करने की प्रेरणा दी और कहा कि रास मे तुम श्री प्रिया-प्रियतम के प्रत्यक्ष दर्शन का सुख प्राप्त करोगे। आचार्यों की यह आज्ञा शिरोधार्य करके श्री घमण्ड देव जी ने करहला के उदय करण और खेम करण नामक दो ब्राह्मणो की सहायता से रास का आयोजन किया और इस प्रकार ब्रज के गाँव करहला से, १६वी शताब्दी मे, रास रगमच पुनर्गठित हुआ।

'रास सर्वस्वकार' ने भी अपने ग्रन्थ मे उक्त घटना का उल्लेख किया है, किन्तु उसने श्री वल्लभाचार्य जी का नाम स्पष्ट रूप से नही लिया। केवल विष्णु स्वामी मत के पोषक आचार्य[2] कहकर एक अस्पष्ट सकेत मात्र किया है, किन्तु स्वामी हरिदास जी का नाम रास के प्रेरक के रूप मे उसने स्पष्टता से लिखा है। 'रास-सर्वस्वकार' के अनुसार ललिता सखी के अवतार स्वामी हरिदास जी को महल से रास-रस प्रगट करने की आज्ञा हुई, तब उन्होने मथुरा आकर विष्णु स्वामी मत के पोषक आचार्य जी से जो उस समय विश्रान्त घाट पर रह रहे थे, सहमति लेकर माथुर-भक्तो से आठ बालक माँगे। स्वय आचार्य जी ने भगवान् कृष्ण और हरिदास जी ने राधा बनने वाले स्वरूप का शृगार किया। इसी समय आकाश से मुकुट उतरा और रास-लीला का आरम्भ हुआ, किन्तु भगवान् कृष्ण के स्वरूप के अन्तर्ध्यान हो जाने से हरिदास जी ने स्वय रास करने का विचार त्याग कर श्री घमण्ड देव जी से पुन रास आरम्भ करने को कहा और फिर घमण्ड देव जी ने करहला जाकर 'उदय करण' और 'खेम करण' नामक ब्राह्मणो की सहायता से रास की वर्तमान परम्परा चलाई। इस कथन के अतिरिक्त

---

१ देखिए ब्रज-भारती वर्ष १, अक ४, पृष्ठ १२।

२ कुछ विद्वानों का मत यह भी है कि रास रगमच की इस स्थापना में आचार्य शब्द श्री हित हरिवश जी के लिये प्रयुक्त है।

भक्तमाल के टीकाकार श्री प्रिया दास जी ने भी कई स्थलो पर श्री हरिदास जी के रास-लीला से सम्बन्धित होने का उल्लेख किया है, जिससे हरिदास जी का रास से सम्बन्ध होना और अधिक प्रमाणित हो जाता है। प्रिया दास जी ने कहा है—

"रतन सुदेस मयी अवनि निकुज धाम, अति अभिराम पिय-प्यारी केलि-रास है।"

तथा—

"स्वामी हरिदास रसरास को बखान सकै, रसिकता की छाप जोई जाई मध्य पाइये।"

उक्त उद्धरणो से यह प्रतीत होता है कि उक्त किंवदन्ती कल्पना नही है। स्वामी हरिदास जी और वल्लभाचार्य जी का रास से अवश्य ही सम्बन्ध रहा होगा। बाल-लीलाओ का रास मे प्राधान्य होना और व्रज की रास-मण्डलियो को श्री नाथ जी का मुकुट प्रदान किए जाने की प्रथा भी यह प्रकट करती है कि वल्लभाचार्य जी का रास की स्थापना मे सहयोग था।

श्री वल्लभाचार्य जी की जीवनी से यह पता लगता है कि आप सवत् १५४८ मे व्रज आये थे और मथुरा मे विश्रान्त घाट पर ठहरे थे,[1] अत रास का आरम्भ अवश्य इसी समय हुआ होगा। यदि रास इसके बाद भी आरम्भ हुआ हो, तब भी वह सवत् १५८७ से पूर्व अवश्य आरम्भ हो चुका होगा, क्योकि यह वर्ष ही श्री वल्लभाचार्य जी का निर्वाण-काल है।

आचार्य शुक्ल जी ने स्वामी हरिदास जी का कविता-काल भी अनुमान से सवत् १६०० से १६१७ तक माना है।[2] अत वह भी अवश्य ही सवत् १५५० के लगभग वृन्दावन मे विद्यमान रहे होगे। कौन जानता है कि रास-लीला के प्रादुर्भाव ने ही हरिदास जी जैसे महान् सगीतज्ञ को सवत् १६०० के लगभग स्वय काव्य लिखने की प्रेरणा प्रदान की हो। उक्त तथ्यो के आधार पर ही हमारी धारणा है कि अधिक से अधिक, व्रज मे सवत् १६०० तक अवश्य ही यह रास प्रचलित हो चुका होगा, क्योकि २०-२५ वर्ष के अवकाश काल मे श्री घमण्ड देव जी ने रास का आरम्भिक रूप अवश्य निश्चित कर लिया होगा, परन्तु श्री ग्राउस महोदय ने श्री नारायण भट्ट को रास का आरम्भकर्त्ता कहा है। यह ठीक है कि रास के विकास मे नारायण भट्ट जी का भाग बड़ा महत्त्वपूर्ण है जिसके कारण कुछ व्यक्ति उन्हें ही रास-लीला का आरम्भकर्त्ता मान लेते हैं।[3] यही नही स्वर्गीय ग्राउस महोदय ने भी कुछ ऐसी पुस्तको के आधार पर अपने 'मथुरा मेमोयर' में भी नारायण भट्ट जी को रास का आरम्भकर्त्ता कहा है।[4]

---

१ देखिये, कांकरौली का इतिहास, पृष्ठ ३१।

२ देखिये, आचार्य शुक्ल जी का हिन्दी-साहित्य का इतिहास (सम्वत् १९९१ का सस्करण), पृष्ठ २०८।

३ देखिये, व्रज-भारती वर्ष ४, अक ४, सवत् २००३ वि० के पृष्ठ ६ पर प्रकाशित नारायण भट्ट शीर्षक लेख।

४ "It was deciple Narain Bhatt, who first established Van-yatra and Ras leela"—ग्राउस

किन्तु यदि रास-लीला के प्रारम्भकर्ता श्री नारायण भट्टजी को माना जाय तब रास का प्रारम्भ स० १६०० के वाद मानना होगा, क्योकि स्वय भट्ट जी सवत् १६०२ मे व्रज आये थे। यहाँ आने पर ही तुरन्त रास की स्थापना कर देना दक्षिण से आये हुए किसी भी व्यक्ति द्वारा सम्भव न था। पहले तो उन्हे यहाँ जमने तथा व्रजभूमि को समझने के लिए ही कम से कम ४-५ वर्ष का अवकाश आवश्यक हुआ होगा फिर वल्लभाचार्य जी का निधन स० १५८७ मे हो चुका था। यदि नारायण भट्ट जी को रास का सस्थापक माना जाता है तो फिर वल्लभाचार्य जी से उसके सम्बन्ध का कोई सामजस्य सिद्ध नहीं होता। कुछ महानुभाव 'भक्तमाल' के आधार पर रास के प्रारम्भकर्त्ता श्री नारायण भट्ट जी को कहते हैं, परन्तु श्री नाभादास जी ने स्वय भट्ट जी के रास से सम्बन्धित होने का कोई उल्लेख नही किया है। प्रिया दास जी ने अपनी टीका मे केवल यही कहा है कि नारायण भट्ट जी ने—

"ठौर-ठौर रास के विलास लै प्रगट किये।"

इसका सीधा अर्थ यही है कि उन्होने स्थान-स्थान पर 'रास के विलास' (रास-स्थल) स्थापित कराये। इस उल्लेख से भी यही प्रकट होता है कि रास व्रज मे पहले ही प्रारम्भ हो चुका होगा, जिसके प्रचार की ओर ध्यान देकर भट्ट जी ने स्थान-स्थान पर रास-मण्डल वनवाये होगे। यदि रास उस समय प्रचलित न होता तो रास-स्थल वनवाने की उन्हे इतनी शीघ्रता न होती। परन्तु चाहे भट्ट जी रास के सस्थापक न हो फिर भी रास के उत्थान और विकास मे भट्ट जी की रास के प्रति सेवाएँ रास के सस्थापको से भी अधिक मूल्यवान् और महत्त्वपूर्ण है। 'रास-सर्वस्व' से प्रतीत होता है कि भट्ट जी ने रास का सारा ढाँचा ही वदल दिया था और उसे केवल सगीत मात्र ही न रख कर अभिनय का रूप भी आपने ही दिया था। उनके इस महत्वपूर्ण कार्य का उल्लेख हम आगे करेंगे।

दुर्भाग्य की वात है कि अभी तक प्रयत्न करने पर भी घमण्ड देव जी के जीवन-वृत्त की उचित जाँच नही हो सकी है। जनश्रुति के आधार पर केवल यही निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि वे रास-लीला के सस्थापक थे। साथ ही यह भी मानना पडेगा कि करहला गाँव से भी श्री घमण्ड देव जी का निकट का सम्पर्क था और कदाचित् उनकी मृत्यु भी वही हुई थी, अन्यथा उनकी समाधि, जो अद्यावधि करहला गाँव मे वर्त्तमान है, वहाँ न वनाई जाती। करहला गाँव मे घमण्ड देव जी के सम्वन्ध मे कुछ अनुश्रुतियाँ प्रचलित हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि वे करहला की कदम-खण्डी मे विरक्त भाव मे निवास करते थे। वही सरोवर-से गीली मिट्टी निकाल कर उससे राधा-कृष्ण और सखियो की मूर्त्तियाँ वनाते थे और अपनी भावना के अनु-सार भगवान् की विविध रास-लीलाओ की झाँकी वनाते और सन्ध्या को इन मूर्त्तियो को सरोवर में विर्सजित कर देते थे। वाद में वे वालको का शृगार करके रास करने लगे थे, जैसा ऊपर कहा जा चुका है।

इस प्रकार की अनुश्रुतियो से सिद्ध होता है कि घमण्ड देव जी का करहला से घनिष्ठ सम्वन्ध था। कुछ रासधारियो का तो यह मत है कि करहला ही घमण्ड देव

जी का जन्म-स्थान भी है, परन्तु कुछ निम्वार्क-सम्प्रदायी सज्जन उनका जन्म-स्थान पजाव का वतलाते है। पजाव मे निम्वार्क-सम्प्रदाय के अन्तर्गत घमण्ड देव जी द्वारा सस्थापित कुछ प्रसद्धि गद्दियाँ भी है, किन्तु यह भी अभी शोध का ही विपय है कि करहला वाले घमण्ड देव जी और पजाव वाले घमण्ड देव जी एक ही महानुभाव थे या पृथक्-पृथक् व्यक्ति थे। यहाँ हमे इस विवाद मे जाने की आवश्यकता नही है, फिर भी हम इस सम्बन्ध मे इतना तो कह ही सकते हैं कि हमारी वर्त्तमान रास-लीलाओ के जनक घमण्ड देव जी स० १५४८ के लगभग अवश्य वर्त्तमान रहे होगे, अत यदि वह नारायण भट्ट के पूर्ववर्ती नही भी हो तो भी उनसे वयोवृद्ध अवश्य थे। हमारा अनुमान है कि घमडदेव जी की मृत्यु नारायण भट्ट जी के आगमन से पूर्व ही हो चुकी थी, अन्यथा नारायण भट्ट जी रास के विकास और सस्कार मे अवश्य ही उन का सहयोग प्राप्त करते, किन्तु उसका उल्लेख 'रास-सर्वस्व' तथा अन्य ज्ञातव्य-सामग्री मे नही मिलता है।

अत यही कहना उचित होगा कि घमण्ड देव जी ने करहला निवासी खेम करण तथा उदय करण के सहयोग से रास का आरम्भ किया और तभी से करहला गाँव रास-लीला का केन्द्र वना। जव नारायण भट्ट जी ने रास को शास्त्रीय रूप दिया तो उन्हे भी करहला के ब्राह्मण 'रामराय' और 'कल्याण राय' का सहयोग लेना पडा था।

इस विवरण से भी यही प्रकट होता है कि घमण्ड देव जी ही नही, वरन् उन की पीढ़ी के उदय करण और खेम करण भी नारायण भट्ट जी के व्रज आते आते अपनी जीवन-लीला समाप्त कर चुके थे, अन्यथा श्री नारायण भट्ट को करहला के ही दूसरे ब्राह्मणो को अपने सहयोग के लिए वुलाने की आवश्यकता क्यो पड़ती ?

यह सोचना भी भ्रमपूर्ण है कि श्री नारायण भट्ट ने किसी ईर्ष्या या द्वेप के कारण इन लोगो का सहयोग न लिया होगा, अन्यथा उसकी कुछ उल्लेखनीय प्रतिक्रिया किसी न किसी रूप मे अवश्य सामने आती, जैसे कि कुछ समय पहले ही दायें-वायें मुकुट के एक विवाद पर रासधारियो मे घोर द्वद हो चुका है, परन्तु उस समय ऐसी किसी भावना का आभास तक नही मिलता। श्री नारायण भट्ट जी को तो व्रजवासी मात्र का सहयोग रास के विकास के लिए प्राप्त हुआ था।

इस प्रकार यह सिद्ध है कि आज से लगभग ४५० वर्ष पूर्व कला के विकास की दृष्टि से व्रज मे यह कार्य वडा महत्वपूर्ण हुआ। जिस प्रकार ब्रह्मा जी ने ऋग् से पाठ, साम से गायन, यजु से अभिनय और अथर्व से रस लेकर सस्कृत साहित्य मे नाट्य-शास्त्र का पचम वेद वनाया ठीक उसी प्रकार से ही व्रज के कलाकारो ने भी भागवत से प्रेरणा, अष्टछाप से गायन, अनुभवी कलाकारो से अभिनय और रसिक-शिरोमणि भगवान् श्री कृष्ण के जीवन से रस लेकर व्रज-सस्कृति का अमर सदेश घर-घर वितरित करने के लिए रास-लीला को पुन अवतीर्ण किया।

श्री घमण्डदेव जी के वाद सन्-सम्वतवार रास के सस्थापको का उल्लेख 'रास-सर्वस्व' कार ने किया है। कहते हैं कि घमण्डदेव जी के साथी उदय करण और खेम-करण के वाद 'उदय करण' के पुत्र 'विक्रम' ने रास-लीला की वागडोर सँभाली और रास का चमत्कार दिखाकर न केवल औरगजेव को ही चकित किया वरन् वाद मे

महाराज जयसिंह को भी प्रभावित करके करहला के रासधारियो के मकान पक्के बनवाये, जो अब भी वहाँ वर्तमान हैं और 'भूलावारी' मन्दिर तथा 'रास-चौंतरा' भी उक्त महाराज ने ही बनवाकर अपने आपको महल-हवेली वाले रासधारियो के नाम से विख्यात किया। यह महल-हवेली वाले रासधारी कहे जाते हैं। परन्तु 'रास-सर्वस्व' के अनुसार इसके बाद ही भ्रष्टाचार फैल जाने के कारण करहला के रास का प्राचीन गौरव छिन्न-भिन्न हो गया, जो फिर से बिहारी लाल ब्राह्मण (रास-सर्वस्व-कार के पिता) द्वारा संस्थापित किया गया। ग्रन्थ मे इन घटनाओ का जो काल दिया गया है, उनका विवेचन स्थानाभाव के कारण यहाँ उचित न होगा फिर भी यह कहना ही पड़ेगा कि 'रास-सर्वस्व' मे घटनाओ का जो समय दिया गया है वह अधिकाशत: अनुमान पर ही आधारित प्रतीत होता है। करहला रास का मुख्य गढ रहा है, यह उस गाँव के वातावरण से ही स्पष्ट लक्षित होता है, परन्तु कालान्तर मे उसने उसके विकास मे कोई महत्वपूर्ण योग नही दिया। वास्तव मे उसके व्यापक प्रचार, मौलिक सुधार तथा विकास का सारा श्रेय श्री नारायण भट्ट और उनके परकर को ही है।

हमारा अनुमान है कि ब्रज मे आकर श्री नारायण भट्ट ने रास का जो स्वरूप प्रचलित देखा वह उन्हे अधिक आकर्षक प्रतीत नही हुआ। इसलिए भट्ट जी ने करहला के ही दो ब्राह्मण सम राय और कल्याण राय के अतिरिक्त बादशाह की सेवा से अवकाश प्राप्त सुप्रसिद्ध नर्त्तक वल्लभ के सहयोग से रास को शास्त्रीय रूप देकर प्रचलित किया और रास के नव-विकास की योजना बनाई। रास-लीलाओ की इस शास्त्रीय परम्परा का आरम्भ इस बार बरसाने की रस-सिक्त भूमि से जो करहला के अति निकट रासेश्वरी राधिका जी का प्रसिद्ध स्थान हुआ है, ऐसा प्रतीत होता है। इन रास-लीलाओ के आरम्भ की स्मृति अब भी बरसाने मे प्रत्येक भाद्रपद मास मे राधा-अष्टमी के पुण्य-पर्व पर 'बूढी-लीला' के मेले के रूप मे बड़ी श्रद्धा और प्रेम से मनाई जाती है। श्री नारायण भट्ट जी ने ही इस बूढी-लीला को आरम्भ किया और स्थान-स्थान पर पृथक्-पृथक् लीलाओ का स्थान निर्दिष्ट करके रास-मण्डलो का निर्माण भी कराया, जैसा कि भक्तमाल के अतिरिक्त ध्रुवदास जी के निम्न दोहो से भी प्रकट होता है—

"भट्ट नराइन अति सरस, ब्रज-मण्डल सों हेत।
ठौर-ठौर रचना करी, निकट जान सकेत॥"

नारायण भट्ट जी द्वारा संस्थापित यह परम्परा बड़ी लोक-प्रिय सिद्ध हुई और रास-लीला का सर्वतोन्मुखी विकास हुआ। नर्त्तक वल्लभ का सहयोग रास की सफलता का एक प्रमुख कारण बना। यह नर्त्तक बड़ा गुणी था। वल्लभ की नृत्य-कुशलता की सराहना स्वय नाभादास जी ने निम्न छप्पय मे की है—

"नृत्य-गान-गुन-निपुन, रास मे रस-बरसावत।
नव लीला ललितादि बलित, दंपतिहि रिझावत॥"

अति उदार विस्तार, सुजस ब्रज-मण्डल राजत।
महा-महोच्छव करत, बहुत सबही सुख साजत॥
श्री नाराइन भट्ट प्रभु, परम प्रीति रस-बस किये।
ब्रज वल्लभ वल्लभ परम, दुरलभ सुख नैनन दिये॥"

वल्लभ जी की नृत्य-कुशलता और नट-नागर भगवान् श्री कृष्ण के नृत्य-प्रधान व्यक्तित्व का रास पर बहुत ही व्यापक प्रभाव पड़ा है। रास के प्रत्येक सवाद और कथनो मे इगितो और नृत्यो का प्रचलन सर्वत्र व्याप्त रहता है।

इस प्रकार नारायण भट्ट जी ने रास के मूल रूप का जीर्णोद्धार करके उसे शास्त्रीय रूप दिया और इस दृष्टि से वह निश्चित रूप से रास-लीलाओ के एक मात्र आचार्य कहे जाने चाहिएँ, क्योकि उनके बाद रास की निश्चित प्रणाली मे कोई विशेष परिवर्त्तन किये गये हो, ऐसा प्रतीत नही होता। उन्होने स्थान स्थान पर रास-मण्डल स्थापित कराकर उनका लोक जीवन से घनिष्ठ सम्पर्क तो स्थापित किया ही, जैसा कि प्रियादास जी ने लिखा है, साथ ही उन्होने इससे भी महत्वपूर्ण कार्य यह किया कि रास को केवल सगीत तक ही सीमित न रख कर नृत्य, वादन और गायन के साथ-साथ अन्त में उसे अभिनय का रूप भी दे दिया, यद्यपि यह किया उन्होने धार्मिक कारणो से ही था। इस प्रसग को रासधारी 'राधा कृष्ण जी' ने निम्न प्रकार लिखा है—

"कुछ दिन पीछें भए विचारू। प्रगट्यो भाव जदपि ससारू॥
रास-विलास स्वामिनी प्यारी। सखी-भाव बिन नहिं अधिकारी॥
प्राकृत-दंपति लीला मांही। परिचारक कोउ पवसति नांहीं॥
रहैं पास तिहि अवसर दासी। जो स्वामिनि की कृपा निवासी॥
प्रभु के भक्त अनेक विधाना। उज्जल सख्य, दास्य, रस नाना॥
तिन कहँ सुख उपजै जिहि भाँती। प्रभु-पद में मन रह दिन राती॥
अस विचारि हरि की ललित, लीलन की अनुहारि।
रसिक नाराइन भट्ट ने, प्रथित कियो संसार॥
जिहि प्रकार रहि प्रेम दृढ, निखिल भक्ति जिय होइ।
निज-निज रुचि हरि भाव कर, सुख पावें सव कोइ॥"

इस प्रकार 'नित्य-रास' के साथ होने वाली भगवान् की जीवन-घटनाओ के अभिनय का सूत्रपात करने का श्रेय भी भट्ट जी को ही है। यहाँ यह बात विशेष ध्यान देने की है कि श्री नारायण भट्ट जी ने यद्यपि रास का स्वरूप एक दम बदल दिया, परन्तु फिर भी उन्होंने 'नित्य-रास' की उस प्रणाली को ज्यो की त्यो रास के आरम्भ मे शीर्ष स्थान दिया, जो श्री घमण्ड देव जी द्वारा सस्थापित थी। इन प्रयत्नो का ही यह परिणाम था कि रास लोक-प्रिय हो गए और यह लीलाएँ व्रज की कला की सरक्षता के साथ ही कृष्ण-चरित के प्रचार का मुख्य माध्यम बनी। इन रास-लीलाओ का जनता पर बड़ा व्यापक प्रभाव पडता था। 'भक्तमाल' मे लिखा है कि प्रसिद्ध रामोपासक भक्त 'अलि भगवान्' रास-लीला के देखने मात्र से अपनी सारी

कट्टरता छोडकर कृष्णोपासक हो गये[1] और गुरु के देहावसान से व्यथित हरिदास जी के शिष्य विट्ठल विपुल, जिनका कविता-काल स० १६१५ के लगभग है—रास देखते ही देखते इतने रस-मग्न हो गए कि उनका शरीरान्त[2] ही हो गया। इस घटना से रास मे रस की निष्पत्ति की चरम सीमा अपनी पराकाष्ठा पर पहुँची प्रतीत होती है। भक्तो की दृष्टि मे तो उस समय यह अभिनय ही भगवान् का वास्तविक रास था, तभी तो शरद् पूर्णिमा के रास मे नृत्य करते हुए राधा बने हुए स्वरूप के चरण का घूँघरू टूट कर गिर जाने पर सुप्रसिद्ध भक्त कवि श्री व्यास जी ने निस्सकोच अपना जनेऊ तोडकर बांध दिया था, जैसा कि भक्तमाल मे उल्लेख है—

"सरद उज्यारी रास रच्यौ पिय प्यारी तामे, रग बाढ्यौ भारी कैसें कहि के सुनाइए।
प्रिया अति गति लई, बिजरी सी कौंधि गई, चकाचौंधि भई छबि-मण्डल मे छाइये॥
नूपुर सो टूट, छूट पर्‌यौ अवरेख्यौ मन, तोरिकें जनेऊ कस्यौ वाही भाँति भाइए।
सकल समाज मे यों कहें आज काम आयौ, दीयौ हौ जनम ताकी बात जिय जाइए॥"

इस प्रकार ब्रज मे ब्रज-सस्कृति और हिन्दी का यह प्रथम रगमच अपने आरम्भ-काल से ही बहुत लोक-प्रिय रहा है, परन्तु आश्चर्य है कि हिन्दी का रगमच स्थापित करने मे इससे कोई प्रेरणा नही ली गई, यद्यपि इसमे सभी नाटकीय तत्त्वों का उचित सम्मिश्रण मिल जाता है। वैसे भी रास का रगमच बहुत सरल तथा आडम्बरहीन है।

एक छोटे से आयताकार मच पर पीछे एक पिछवाई और आगे एक यवनिका डालकर ही रास का मच तैयार हो जाता है। मच के ऊपर मध्य मे राधा-कृष्ण का एक छोटा सिंहासन और पार्श्व मे गोपिकाओ के लिए चौकियाँ या आजकल प्राय कुर्सियाँ डाल दी जाती हैं। मच के नीचे आगे की ओर मण्डलाकार या चतुरस्थ स्थान नृत्यादि के लिए खाली छोड दिया जाता है और इसके बाद सामने फिर रग-बिरगी बगलबदियाँ डाटे और मस्तक पर पागो की पताका-सी फहराता हुआ रास-मण्डली का सगीत-समाज बैठता है। पर्दा खुलते ही कटि-काछनी व किरीट-धारण किये भगवान् ब्रजराज की ब्रजागनाओ से घिरी हुई झाँकी होती है। ब्रज गोपिकाएँ राधा-सहित यहाँ की प्रसिद्ध पोशाक लहँगा-फरिया धारण करती है। रासारम्भ के पूर्व रास-मण्डली का सगीत-समाज विविध पदो द्वारा मगलाचरण करता है फिर आरती के उपरान्त "नित्य-रास" आरम्भ होता है, जिसमे गायन व नृत्य का प्राधान्य होता है। नित्य-रास के उपरान्त किंचित् विश्राम होता है और फिर भगवान् कृष्ण की किसी एक जीवन-घटना का अभिनय होता है।

रास की सबसे बडी विशेषता है उसका नृत्य-प्रधान होना। जैसा कि हम पहले निवेदन कर चुके हैं, यह नृत्य ब्रज के ठेठ नृत्य है, जो आज से लगभग ४०० वर्ष पूर्व

---

१. "अलि भगवान् राम-सेवा सावधान मन, वृन्दावन आप कछु औरें रति भई है।
देखे रास-मण्डल में विहरत रस-रासि वाढ़ी छबि-स्याम दृग सुधि-बुधि गई है॥"

२ "जुगल सरूप अवलोकि नाना नृत्य-भेद, गान, तान सुनि कै रही न सम्हार है।
मिल गए ठौर, पायौ नाम तन और, कहैं रस-सागर मो ताकौ यों विचार है॥"

की ब्रज-सस्कृति के मर्म को छिपाये अपने उसी रूप मे किंचित् परिवर्तनो के साथ विद्यमान है, परन्तु इन सब नृत्यो का मूल आधार भी अति प्राचीन भरत मुनि के 'नाट्य-शास्त्र' मे उल्लिखित 'रासक' के ही अनुसार है। भरत ने 'रासक' एक उपरूपक माना है और उसके तीन भेद किये हैं। इन तीनो भेदों का मिश्रण रास के वर्त्तमान नृत्य में मिल जाता है। लय के अनुसार विभिन्न नृत्यो द्वारा रास मे "ताल-रासक" और हाथ मे डडा लेकर उन्हें बजाते हुए नृत्य मे "दण्डक रासक" और "द्वै-द्वै गोपी बिच-बिच माधव" के मण्डलाकार नृत्य द्वारा प्राचीन "मण्डल-रासक" का स्वरूप रास-लीलाओ मे आज भी देखा जा सकता है।

रास के इस इतिहास और विकास से यह भली प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि अब तक रास का ब्रज के लोक-जीवन से घनिष्ट सम्पर्क रहा है, परन्तु दुर्भाग्य की बात है कि धीरे-धीरे रास का बहुत ह्रास हो गया है और अब इसके पुनर्गठन की पुनः आवश्यकता प्रतीत होने लगी है। इस सम्बन्ध मे अब शीघ्र ही प्रयत्न किये जाने आवश्यक है।

कट्टरता छोडकर कृष्णोपासक हो गये[1] और गुरु के देहावसान से व्यथित हरिदास जी के शिष्य विट्ठल विपुल, जिनका कविता-काल स० १६१५ के लगभग है—रास देखते ही देखते इतने रस-मग्न हो गए कि उनका शरीरान्त[2] ही हो गया। इस घटना से रास मे रस की निष्पत्ति की चरम सीमा अपनी पराकाष्ठा पर पहुँची प्रतीत होती है। भक्तो की दृष्टि मे तो उस समय यह अभिनय ही भगवान् का वास्तविक रास था, तभी तो शरद् पूर्णिमा के रास मे नृत्य करते हुए राधा बने हुए स्वरूप के चरण का घूँघरू टूट कर गिर जाने पर सुप्रसिद्ध भक्त कवि श्री व्यास जी ने निस्सकोच अपना जनेऊ तोडकर बांध दिया था, जैसा कि भक्तमाल मे उल्लेख है—

"सरद उज्यारी रास रच्यौ पिय प्यारी तामे, रग बाढ्यौ भारी कैसें कहि के सुनाइए।
प्रिया अति गति लई, बिजरी सी कौंधि गई, चकाचौंधि भई छबि-मण्डल में छाइये॥
नूपुर सो टूट, छूट पर्‌यो अवरेख्यो मन, तोरिकें जनेऊ कस्यौ बाही भाँति भाइए।
सकल समाज मे यों कहें आज काम आयौ, दीयौ हो जनम ताकी बात जिय जाइए॥"

इस प्रकार व्रज मे व्रज-सस्कृति और हिन्दी का यह प्रथम रगमच अपने आरम्भ-काल से ही बहुत लोक-प्रिय रहा है, परन्तु आश्चर्य है कि हिन्दी का रगमच स्थापित करने मे इससे कोई प्रेरणा नही ली गई, यद्यपि इसमे सभी नाटकीय तत्त्वो का उचित सम्मिश्रण मिल जाता है। वैसे भी रास का रगमच बहुत सरल तथा आडम्बरहीन है।

एक छोटे से आयताकार मच पर पीछे एक पिछवाई और आगे एक यवनिका डालकर ही रास का मच तैयार हो जाता है। मच के ऊपर मध्य मे राधा-कृष्ण का एक छोटा सिंहासन और पार्श्व मे गोपिकाओ के लिए चौकियाँ या आजकल प्राय कुर्सियाँ डाल दी जाती हैं। मच के नीचे आगे की ओर मण्डलाकार या चतुरस्य स्थान नृत्यादि के लिए खाली छोड दिया जाता है और इसके बाद सामने फिर रग-बिरगी वगलवदियाँ डाटे और मस्तक पर पागो की पताका-सी फहराता हुआ रास-मण्डली का सगीत-समाज बैठता है। पर्दा खुलते ही कटि-काछनी व किरीट-धारण किये भगवान् व्रजराज की व्रजागनाओ से घिरी हुई झाँकी होती है। व्रज गोपिकाएँ राधा-सहित यहाँ की प्रसिद्ध पोशाक लहँगा-फरिया धारण करती है। रासारम्भ के पूर्व रास-मण्डली का सगीत-समाज विविध पदो द्वारा मगलाचरण करता है फिर आरती के उपरान्त "नित्य-रास" आरम्भ होता है, जिसमे गायन व नृत्य का प्राधान्य होता है। नित्य-रास के उपरान्त किंचित् विश्राम होता है और फिर भगवान् कृष्ण की किसी एक जीवन-घटना का अभिनय होता है।

रास की सबसे बड़ी विशेषता है उसका नृत्य-प्रधान होना। जैसा कि हम पहले निवेदन कर चुके हैं, यह नृत्य व्रज के ठेठ नृत्य है, जो आज से लगभग ४०० वर्ष पूर्व

---

१ "अलि भगवान् राम-सेवा सावधान मन, वृन्दावन आए कछु औरें रति भई है।
देखे राम-मण्डल में विहरत रस-रासि बाढ़ी छवि-प्यास दृग सुधि-बुधि गई है॥"

२. "जुगल सरूप अवलोकि नाना नृत्य-भेद, गान, तान सुनि कै रही न सम्हार है।
मिल गए ठौर, पायौ नाम तन और, कहैं रस-सागर मो ताकौ यों विचार है॥"

की ब्रज-संस्कृति के मर्म को छिपाये अपने उसी रूप मे किंचित् परिवर्तनो के साथ विद्यमान है, परन्तु इन सब नृत्यो का मूल आधार भी अति प्राचीन भरत मुनि के 'नाट्य-शास्त्र' मे उल्लिखित 'रासक' के ही अनुसार है। भरत ने 'रासक' एक उपरूपक माना है और उसके तीन भेद किये हैं। इन तीनो भेदों का मिश्रण रास के वर्तमान नृत्य में मिल जाता है। लय के अनुसार विभिन्न नृत्यो द्वारा रास मे "ताल-रासक" और हाथ मे डण्डा लेकर उन्हें बजाते हुए नृत्य मे "दण्डक रासक" और "द्वै-द्वै गोपी बिच-बिच माधव" के मण्डलाकार नृत्य द्वारा प्राचीन "मण्डल-रासक" का स्वरूप रास-लीलाओ मे आज भी देखा जा सकता है।

रास के इस इतिहास और विकास से यह भली प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि अब तक रास का ब्रज के लोक-जीवन से घनिष्ट सम्पर्क रहा है, परन्तु दुर्भाग्य की बात है कि धीरे-धीरे रास का बहुत ह्रास हो गया है और अब इसके पुनर्गठन की पुनः आवश्यकता प्रतीत होने लगी है। इस सम्बन्ध मे अब शीघ्र ही प्रयत्न किये जाने आवश्यक है।

: २ :

रास-लीला के नृत्य और संगीत

श्री लक्ष्मी नारायण गर्ग, सम्पादक : 'सगीत', हाथरस

रास-लीला एक ऐसी नृत्य-परम्परा है जिसने भारत के अनेक नृत्यो के साथ पाश्चात्य नृत्यो को भी जन्म दिया है। भारत के प्रत्येक प्रान्त की नृत्य-कला और सगीत की अपनी निजी विशेषतायें हैं किन्तु उनका आधारभूत तत्त्व एक ही है। नृत्य को हमारे यहाँ धार्मिक महत्व प्राप्त है इसीलिए सौभाग्य की कामना के लिए, राज्याभिषेक के समय, गृह-प्रवेश, पाणि-ग्रहण सस्कार, मित्र के स्वागत तथा पुत्र जन्मादि के अवसरो पर नृत्य का आयोजन करना चाहिए, ऐसा शास्त्र का कथन है।

ब्रज की भूमि का नृत्य और सगीत की दृष्टि से अत्यन्त महत्व है। कलाओ के सम्राट् भगवान् श्री कृष्ण ने अपनी विविध लीलाओ द्वारा भारतीय सस्कृति का पोषण करके ससार के समक्ष एक उदाहरण प्रस्तुत किया है। परम्पराओ के रूप मे नृत्य और सगीत की जो विरासत विद्यमान है वह सस्कृति का अभिन्न अग तो है ही, जीवन को 'सत्य, शिव, सुन्दर' तक ले जाने का एक-मात्र माध्यम भी है। प्रस्तुत लेख का विषय भगवान् कृष्ण द्वारा प्रस्तुत रास-लीला के नृत्य और सगीत की शास्त्रीय-व्याख्या, विविधता तथा उसके कलात्मक सौन्दर्य का विश्लेषण है। इस रास के अनेक विवरण प्राचीन भारतीय साहित्य मे उपलब्ध है, इन्ही के आधार पर हम रास नृत्यो के प्राचीन रूप का परिचय प्राप्त कर सकते हैं।

जिस प्रकार ताण्डव शकर की तामसिक प्रवृत्तियो का प्रतीक है, उसी प्रकार रास भगवान् कृष्ण की शृगार-प्रधान भावनाओ का द्योतक है। 'नाट्य-शास्त्र' के आदि महर्षि भरत ने रास के तीन भेद बताये हैं। 'ताल रासक', 'दण्ड रासक' और मण्डल-रासक, जिसे 'ताली रासक' भी कहते है।

हल्लीशक, रास[1] और रासक एक दूसरे के अत्यन्त निकट है। अभिनव गुप्त ने 'नाट्य-शास्त्र' की टीका मे रासक तथा हल्लीसक का वर्णन करते हुए कहा है कि "मण्डल के द्वारा जो नृत्य सम्पन्न हो उसे हल्लीसक कहते है। उसमे एक नेता होना चाहिए, जिस प्रकार कि गोपियो मे भगवान् हरि। इसमे अनेक राग, ताल तथा विभिन्न प्रकार की लयो का समावेश होता है। चौसठ युगल अर्थात् एक-एक स्त्री पुरुष की चौंसठ जोडियाँ इसमे हो सकती है।" यही वर्णन भोज ने 'शृगार-प्रकाश' मे

---

१ हरिवंश, विष्णु पुराण, स्कन्द पुराण तथा अनेक प्राचीन ग्रन्थों में रास तथा हल्लीसक का उल्लेख मिलता है।

किया है। 'नाट्य-दर्पण' मे कहा गया है कि हल्लीसक मे सोलह या बारह नायिकाएँ नृत्य करें तथा हाथो को बाँधकर ठीक प्रकार रखें। लास्य के भाव-भेद से इसके अनेक भेद हो जाते हैं जो कि नियम-रहित होने के कारण परिवर्तित होते रहते हैं।

कालान्तर मे 'मण्डल-रासक' अधिक लोकप्रिय हुआ, जो मच पर अभिनीत होता था और उसमे लोक-नृत्य की प्रधानता रहती थी। गुजरात मे यह परम्परा आज भी विद्यमान है। मध्य गुजरात के धोल के निवासी जिनदत्त सूरि (१२वी शताब्दी) ने पुरुषो द्वारा छड़ियो से किये जाने वाले 'लकुट-रास' का उल्लेख किया है। 'रासक' की रूप-रेखा का वर्णन करते हुए लक्ष्मण (११४३ ई०) कहता है कि यह एक गीत है, जिसमे ताल की मद और उत्ताल गति का समावेश रहता है। "सप्त-क्षेत्री-रास" (सवत् १३२७) मे 'ताल-रास' और 'लकुट-रास' दोनों का उल्लेख मिलता है। 'ताल-रास' भाटो मे प्रचलित था और 'लकुट-रास' नर्तकों ने प्रयुक्त किया। कवि बाण ने रास के वर्णन मे बताया है कि यह नृत्य ८, १२ अथवा ३२ स्त्रियो द्वारा किया जाता है। राज शेखर (नवी शताब्दी) 'दड-रासक' के बारे मे कहते है कि यह नृत्य डाँडियों के बजाये जाने पर अद्भुत ध्वनि के आधार पर परिचालित होता है। बाघ गुफाओ तथा चिदम्बरम् के मन्दिर मे सात स्त्रियो द्वारा प्रस्तुत 'दड-रासक' के भित्ति-चित्र प्राप्त हुए हैं। १५वी शताब्दी की कतिपय वैष्णव पाडुलिपियो मे 'लकुट' और 'दड-रासक' के चित्र मिले है। १७वी शताब्दी मे भानुदास ने 'गर्वी' नामक एक विशेष प्रकार के नृत्य का उल्लेख किया है, जो 'ताली-रासक' का रूप है। यह नृत्य पुरुषो द्वारा तालियाँ बजा-बजा कर तथा 'शक्ति' की आराधना के गीत गा-गाकर किया जाता है।

दक्षिण मे 'शिलपाद्दिकारम्' (दूसरी शताब्दी) और 'मणिमेखैल' के अनुसार भगवान् श्री कृष्ण उनकी प्रेयसि "नाप्पिनै" और उनके भाई बलराम ने सात गोपियो के साथ हाथ मे हाथ डालकर 'कुरावइकूतु' नृत्य किया। इस नृत्य को अति प्राचीन माना जाता है और वेदो मे इसका उल्लेख मिलता है। वेदोत्तर सस्कृत-साहित्य मे इस नृत्य को 'लाट-रासक' की सज्ञा दी गई है, यह 'लकुट-रासक' का ही दूसरा नाम प्रतीत होता है। वात्स्यायन ने 'नाट्य-रासक' का उल्लेख किया है।

'रास' और 'हल्लीसक' के सम्बन्ध मे श्री मच्छुक देव ने 'टीका सिद्धान्त प्रदीप' मे कहा है कि अनेक नर्तकियो वाला 'रास-नृत्य' ही किसी युग मे 'हल्लीसक' के नाम से प्रसिद्ध था। श्रीमज्जीव गोस्वामी की 'वैष्णवतोषिणी' टीका मे कहा गया है कि रास-महोत्सव पारस्परिक सुख के लिए ही कृष्ण ने आरम्भ किया। कुम्भ ने 'रास' और 'रासक' के अलग-अलग लक्षण बताये है। रास के विषय मे उसने कहा है कि स्वर, पाट, बन्ध, पद, तेन, विरुद, चित्र और मिश्र यह आठ करण इसमे होते है। उद्ग्राह, गमक और सान्द्र स्वर न आवद्ध आभोग और गात्र स्वामी (गात्र उपाधि वाले पुरुष) सहित यह रास होता है। गमक मे 'आसारित' नाम का नृत्य किया जाता है, जिसमे चारी, मण्डल, लास्य के सम्पूर्ण अग तथा देशी ताल का समावेश रहता है।

'सगीत नारायण' मे नाट्य-भेद के ऊपर कोहल का मत उद्धृत किया गया

है, जिसमे कोहल ने दत्तिल के मत का उल्लेख करते हुए नाट्य के सट्टक, त्रोटक, गोष्ठि, वृन्दक, पर, शिल्पक, प्रेक्षण, उल्लापक, हल्लीश, रासिका, उल्लापि, ग्रक, श्री गदित, नाट्य-रासक, दुर्मल्ली प्रस्थान तथा काव्यलासिका यह सोलह देशी रूप बताये हैं तथा डोम्बिका भाँणिका, भाँणिका, प्रस्थानक, लासिका, रासिका, दुर्मल्लिका, विदग्ध शिल्पिनी, हस्तिनी, भिन्नकी और तुम्बकी ये बारह नृत्य के प्रकार बताये हैं। 'अलकार-शास्त्र' मे इन सब के लक्षणो का उल्लेख किया है।

आन्ध्र के महाराजा वेम (सन् १४०० ई०) ने रास का वर्णन करते हुए कहा है कि लास्य के समान चारी करते हुए नर्त्तकियाँ एक-एक पैर की दूरी पर स्थित होकर जोड़ी से स्थान परिवर्तित करती हुई रग मे प्रवेश करें। गायक ऋतु के अनुकूल राग गा रहे हो। 'सूड ताल' मे निबद्ध द्विपदी आदि प्रवन्धो को गाया जा रहा हो, वाद्य भी प्रस्तुत हो। उस समय खड मडल[१] लास्य अग तथा चारी के योग से मनोहर नर्त्तन किया जाय जो कि अनेक बन्ध तथा सुन्दर गीत और अभिनय आदि से युक्त हो। इसमे प्रवेश[२] निष्काम[३], प्रसार[४], विसन्धि[५] हो तथा वाद्य और ताल के अनुसार हाथ की तालियो द्वारा विभिन्न लयो का समावेश करते हुए सुन्दर नर्त्तन हो।

शारदा तनय के अनुसार रास मे १६, १२ अथवा ८ नायक होने चाहिए, जो आपस मे हाथो को बाँध कर नृत्य करें। पिंडो से पिंडी[६] बनायें और इनके गुम्फन से शृखला बनायें, तत्पश्चात् भेदन से भेद करें[७]। पिंड आदि की क्रियाएँ छन्द या वाक्य की समाप्ति पर होती हैं क्योकि पद के मध्य मे अथवा वाच्यार्थ सहित इनका व्यवस्थित प्रदर्शन सम्भव नही।[८] वसत को देखकर प्रफुल्लित चित्त से आनन्द-मग्न स्त्रियाँ जब राजाओ जैसी चेष्टाएँ करती हुई नृत्य करती है तो उसे 'नाट्य-रास' कहा जाता है।

वर्णताल सहित चारी और सम आदि का ज्ञान रखने वाली स्त्रियो के जोडे रग

---

१ करणों के समूह को 'खण्ड' कहते हैं। एक मण्डल में एक खण्ड के प्रयोग करने पर अनेक करण प्रदर्शित करने पड़ते हैं।

२ ताल की एक विशेष क्रिया।

३. ताल की एक विशेष क्रिया।

४. वीणा-वादन में विशेष प्रकार का हस्त-सचालन।

५ काव्य-दोष।

६ 'पिंड' का अर्थ है जोड़ना और 'पिंडी' का अर्थ है गोला बनाना, अत हाथों को आपस में जोड़ कर गोला बना लिया जाता है जैसे कि छोटे बच्चे एक दूसरे से हाथों में हाथ मिला कर गोलाई में घूमने का खेल खेलते हैं। रेफ और ऊर्ध्व हस्त के मिलने से 'पिंड हस्त' बनता है।

७ दोनों हाथों के पिंड आपस में गुँथ कर भिन्न-भिन्न मुद्रा बना लें।

८ पाश्चात्यजगत् के प्रसिद्ध गीत नृत्य 'रॉक एन रोल' के प्रारम्भ में गायन और नर्त्तन दोनों साथ चलते हैं, गीत के समाप्त होते ही केवल स्वर और लय के आश्रय से युगल-वृन्द शरीर के अग-सचालन को द्रुत गति के चर्मोत्कर्ष पर प्रदर्शित करते हैं जहाँ गीत या पद का प्रयोग बिलकुल नहीं होता। इसी प्रकार रास में वाक्य की समाप्ति पर पिंड आदि की क्रियाओं के लिए विधान है, जिसका यथार्थ दिग्दर्शन 'रॉक० एन० रोल' में होता है।

मे प्रवेश करते हैं तो उसे 'चर्चरी' या 'चर्चरी-रास' कहते हैं। चर्चरी को 'चच्चरी' या 'चर्चरिका' भी कहते है। प्राचीन साहित्य मे 'चर्चरी' के अनेक अर्थ मिलते है, यथा केशो के अलग करने में तथा हाथ के द्वारा एक प्रकार का शब्द (चुटकी) गीत का एक भेद, ताल का एक भेद, वर्ण छन्द, एक प्रकार का ढोल, आमोद-प्रमोद, गायन-वादन, अग-भगी, नाटक मे एक पर्दा गिरने के बाद और दूसरा उठने के पूर्व गाया जाने वाला गीत, चापलूसी, घुँघराले बाल, दो व्यक्तियो का बारी-बारी से कविता-पाठ करना, चाचर, चच्चरी ताल, चर्चरिका ताल, एक राग विशेष। वेम ने 'चर्चरी नृत्य' और 'चर्चरी' की अलग-अलग व्याख्या की है। 'तेति गिध' बोलो से युक्त ताल द्वारा रास-नृत्य किया जाय अथवा चर्चरी ताल के अनुसार चार आवर्तन मे नर्त्तन हो तो उसे 'चर्चरी-नृत्य' कहते हैं। जहाँ रास क्रम के अनुसार नर्तकी प्रविष्ट हो, वर्णताल के अनुसार वाद्य बज रहा हो, युगल रूप मे चर्चरी को बार-बार गाती हुई अथवा शृगार-वर्णन युक्त द्विपदी को गाती हुई 'लासिकाएँ'[1] नर्तन करें तो उसे केवल 'चर्चरी' कहते हैं।

कुम्भ के अनुसार दो पदो, वर्णताल (वाद्य) तथा 'चर्चरी' से युक्त अथवा मनोहर लास्य सहित गति-भेदो द्वारा जहाँ नारियाँ वसन्तोत्सव मे रस, राग और लय के भेदो का ध्यान रख कर मण्डलाकार नृत्य करें, उसे 'चर्चरी-नृत्य' कहते है। चर्चरी-नृत्य की क्रियाओ को कई-कई बार दुहराया जाता है और अधिक से अधिक इसमें २४ युगल तक का विधान है। इसमे बाएँ-दाएँ अगो के सचालन से परिष्कृत वर्णन के अन्त मे दो 'आलीढ' मे युक्त द्रुत ताल को 'छोटका' के माध्यम से प्रदर्शित किया जाता है।

'आलीढ' के तीन भेद होते है, यथा—स्थान, अगहार तथा मण्डल। वर्तमान रास मे इसका कुछ रूप पाया जाता है। दाक्षिणात्य 'भरतनाट्यम्' मे आलीढ का काफी प्रयोग किया जाता है। इसके अगहार करने मे आठ करणों का प्रयोग किया जाता है। 'व्यसित, निकुट्ट और नूपुर करण बाएँ पैर से और अलातक, आक्षिप्त, उरोमण्डल, करिहस्त तथा कटिच्छिन्न करण, क्रम से दाएँ पैर द्वारा प्रदर्शित किये जाते है। आलीढ स्थान मे दाएँ पजे पर बैठकर बाएँ पैर को सामने फैला दिया जाता है, और सीधे पैर से ताल के पाँच आघात किये जाते है। आलीढ मण्डल मे बाएँ हाथ से शिखर-हस्त और दाएँ हाथ से कटका-मुख-हस्त मुद्राएँ बनाकर दाएँ पैर से तीन बालिश्त आगे बायाँ पैर रखा जाता है तथा चुटकी द्वारा द्रुत ताल का प्रदर्शन किया जाता है। इसके पश्चात् अगो का परस्पर सचार तथा हाथ से ताली देते हुए नृत्य के द्वारा तीन अथवा चार खण्ड किये जाते है, तत्पश्चात् परिक्रमा करके पात्र अलग हो जाते है और फिर पुन प्रवेश करते हैं। यह सब एक ही काल मे होता है। इन क्रियाओ के पश्चात् ताल मे पुष्पाजलि का प्रदर्शन किया जाता है, जिसमे एक-एक युगल के पार्श्व मे से पात्र प्रवेश करते जाते हैं। पणव वाद्य पर रूपा ताल का प्रयोग किया जाता है,

---

१. 'अमरकोष' में नर्त्तकी के लिए 'लासिका' शब्द प्रयुक्त किया गया है।

फिर नायिका 'शुष्क गीत'[1] गाती है।

उत्तर भारत के कुमाऊँ प्रदेश मे चर्चरी-नृत्य आज भी सुरक्षित है जहाँ इसे 'चाचरी' कह कर पुकारा जाता है। कुमाऊँ की धरती के किसी भी उत्सव मे 'चाचरी' देखा जा सकता है। अन्य लोक-नृत्यो की अपेक्षा यह 'वृत्त-नृत्त' वहाँ सर्वाधिक लोक-प्रिय है और इसे 'झोड़ा' कहकर भी पुकारा जाता है। नर्तक-नर्तकियो की इसमे कोई सीमा नही इसी कारण किसी-किसी अवसर पर डेढ सौ स्त्री-पुरुष तक इसमे दिखाई पड़ जाते है। भोले पर्वतीय सामूहिक रूप मे अपनी भावनाओ की अभिव्यक्ति के लिए जब नृत्य-मय हो जाते है तो देखते ही बनता है। 'हुडका'[2] वाद्य पर थाप पडते ही कुमाऊँ का बच्चा-बच्चा 'चाचरी' के लिए पागल हो उठता है। वसन्त हो या शिशिर, उत्सव हो या त्यौहार, इस नृत्य को किसी की अपेक्षा नही, सब कुछ इसके अनुकूल हो जाता है, ऐसा नशा है इस 'चाचरी' मे। इसका नायक हुडका पर पहली तान छेडता है और सब उसका अनुसरण करते है, परन्तु नायक मे एक और विशेषता होती है और वह है उसका आशु-कवि होना। उन्मत्त भावनाओ द्वारा नए-नए छन्दो का सृजन आनन-फानन होता है। दो पक्तियो का तुक मिलाने के लिए 'जोड' मिलाए जाते है। जैसे —

"दो तारी को तार, तिलका दो तारी को तार।
ऊने रौ यो दिन मासा, हो, ऊने रौ बहार॥"

अर्थात् "दो तारो से बना हुआ 'दोतारा' कितना आनन्ददायक सगीत उत्पन्न करता है। तिलका, मेरी प्रेयसि, हमारा यह युगल-मिलन उसी जीवन-सगीत का सृजन करेगा। समय की गति चलती रहे, यह दिन और यह मास आते रहे और आती रहे यह बहार।"

एक ओर अर्ध-मडलाकार नारियाँ और दूसरी ओर पुरुष वर्ग चाचरी मे होता है। एक दूसरे की पिंडियाँ आपस मे बँधी होती है और फिर बाली-जावा के सुकुमार लास्य नृत्यो जैसी गति मे 'पाद-विन्यास' तथा 'सरण-क्रिया' होती रहती है। थके हुए प्रतिनिधि इच्छानुसार हट जाते है और प्रतीक्षा मे खडे अन्य नर्तक उस स्थान को ग्रहण कर लेते है। चाँदनी थक जाती है, लेकिन चाचरी चलता रहता है घेरे पर घेरे बनते चले जाते है। मध्य प्रदेश के आदिवासियो का 'करमा-नृत्य' और 'जोडी-नृत्य' भी चाचरी के ही समकक्ष होते हैं।

रास-नृत्य के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न रूपक भी होते है। शुभकर ने 'रास नृत्त' रूपक को सूत्रधार से रहित एकाकी बताया है, जिसमे उत्कृष्ट नान्दी (स्तुति) के पश्चात् कैशिकी और भारती वृत्ति[3] का समावेश होता है। मुख्य नायक के अति-

---

१ 'शुष्क गीत' में सार्थक शब्दों का प्रयोग नहीं किया जाता, केवल निरर्थक वर्ण प्रयुक्त किये जाते हैं जैसे त, दा, रे नि, य, ल, लोम आदि। वर्तमान का 'तराना' ही प्राचीन काल में 'शुष्क गीत' कहलाता था।

२ हुड्का प्राचीन ढक्का (डमरू) की भाति का ही होता है।

३ 'कैशिकी वृत्ति' में गीत, नृत्य, विलास और रति का समावेश रहता है तथा 'भारती वृत्ति' में संस्कृत के वाचिक अभिनय की प्रधानता रहती है।

रिक्त पाँच पात्र, भाषा, विभाषा, वीथी[1] तथा तीन सन्धियो से यह मडित होना चाहिए। गर्भ और अवमर्ष सधियो का इसमे अभाव रहता है तथा विदूषक[2] का उपदेश इसमे क्रोध उत्पन्न करने वाला होता है। उदात्त भाव सहित यह उत्तरोत्तर बढता रहता है।

रास सम्बन्धी उपलब्ध साहित्य मे उसके सगीत पक्ष का स्पष्टीकरण अत्यन्त सीमित शब्दो मे किया गया है जिसके कारण रास के अनेक रूप आज तक गोपनीय एव अस्पष्ट बने हुए है, जिसके लिए अनुसन्धान की आवश्यकता है, परन्तु रास को लोक-नृत्य समझकर जो विद्वान् उसके वास्तविक तत्त्वो का परिज्ञान चाहते हैं वे भ्रम-पीड़ित है। यदि रास की एक भी विशुद्ध भ्रमरी का दिग्दर्शन उनको प्राप्त हो जाय तो उनका भ्रम सहज ही समाप्त हो सकता है। यह सच है कि आज रास का जो स्वरूप हमारे समक्ष रह गया है वह अन्य प्रान्तो के लोक-नृत्यो से भी निम्न स्तर का है, उसके विकास का कोई माध्यम नही। 'यदि किसी सद्प्रयत्न से रास-लीला की परिष्कृत शैली उद्भूत हो सकी तो यह एक महान् कार्य होगा।

रास के प्राचीन वाद्य-यन्त्रो मे झाँझ, करताल, मुहचग, मुरज, उपग, चग, ढोल, मजीरा, वेणु, वीन, ढप, खजरी, ताल तथा झालरि आदि के नाम मिलते है किन्तु आज एक सारगी और मृदग के अतिरिक्त कोई भी शास्त्रीय अथवा लोक-वाद्य उसमे दृष्टिगोचर नही होता। ध्रुवपद, धमार, होली तथा रसिया से रास का अभिन्न सम्बन्ध है किन्तु आज जिस प्रकार के गान का समावेश रास मे किया जाता है वह भी उसके सगीत का ठीक स्वरूप व्यक्त नहीं करता वरन् जुगुप्सित भाव की सृष्टि करता है और रास के स्तर को गिराता है। जब तक सगीत द्वारा रास के रसिको की रसमय अवस्था न हो जाय तब तक वह अपने प्राचीन गौरव को प्राप्त नही हो सकता।

भगवान् श्री कृष्ण रास के समस्त अगो के मर्मज्ञ थे। विशेष-विशेष अवसरो पर वे रास के ताण्डव और लास्य भेदो का भिन्न-भिन्न रीति से सैद्धान्तिक रूप मे प्रयोग करते थे। नृत्य के अतिरिक्त वे गीत और वाद्य-सगीत के भी पूर्ण आचार्य थे। गर्ग सहिता के खड १०, अध्याय ४६ के अनुसार रास के मध्य से कृष्ण के अन्तर्ध्यान हो जाने पर जब राधा मूर्च्छित हो गईं तो उन्होने प्रगट होकर बार-बार वेणु गीत[3] सुनाया तब एक सखी ने राधा से कहा, उठो समस्त दुखो का नाश करने वाले देवकी-

---

१ रूपक के २७ भेदों में से एक, जिसमें एक अङ्क तथा एक नायक होता है। इसमें 'आकाश-भाषित' तथा शृंगार-रस का बाहुल्य रहता है।

२. नाट्य तथा नृत्त-रूपकों में एक हँसाने वाला व्यक्ति रहता है जो मूर्खतापूर्ण बातों द्वारा नायक का सदैव कोपभाजक तथा दर्शकों का मनोरंजन करने वाला होता है। वर्तमान राम-लीला में मनसुखा ऐसा ही विदूपक होता है।

३ वेणुवादन सजीव, मिश्र और निर्जीव तीन प्रकार का होता है। सजीव प्रकार में तालु और वायु द्वारा वशी-रव में विशेष आघात उत्पन्न करके पाद्यक्षर निर्मित किये जाते हैं जिनके भिन्न-भिन्न प्रयोगों द्वारा हृदय पर अलौकिक प्रभाव डाला जा सकता है। निर्जीव प्रकार में तालु का उपयोग बिलकुल नहीं किया जाता, केवल वायु प्रसारित की जाती है। मिश्र प्रकार इन दोनों के मध्य की अवस्था है।

नन्दन वशी बजा रहे हैं, मृदग का छु ग-छु ग नाद हो रहा है, भगवान् वेणु गान कर रहे हैं और बालिकाओ की तालियो की लय मे आसक्त होकर भृकुटियो को चला रहे हैं, गोपियो के गीत मे जिनका अवधान (गीत मे वेणु की ध्वनि के पाटाक्षरो का सम्मिश्रण) है ऐसे देवकीनन्दन वेणु द्वारा गान कर रहे है ।

'रास पचाध्यायी' के भ्रमर-गीत मे केवल 'तिरप' नृत्य का शास्त्रीय पारिभाषिक शब्द प्राप्त होता है । शुद्ध शब्द 'तिरिप' है, जो देशी नृत्त का एक प्रकार है । एक भ्रमरी का नाम भी 'तिरिप' है, जिसके १२ पर्याय होते है, यथा—जानु पृष्ठ भ्रमरी, प्रपद भ्रमरी, स्वस्तिक भ्रमरी, अन्तर भ्रमरी, खण्ड सूची भ्रमरी, मडि भ्रमरी, चक्र भ्रमरी, मडल भ्रमरी, जानु भ्रमरी, कटिच्छिन्न भ्रमरी, करण भ्रमरी तथा अन्तर्जानु भ्रमरी । इनमे से मडि भ्रमरी की 'तिरिप' मे बहुलता होती है । महाराणा कु भकर्ण ने 'तिरिप भ्रमरी' का लक्षण अपने 'सगीत पाठ्य रत्न कोष' मे स्वस्तिक पैर करके तिरछा भ्रमण करना बताया है । ज्यायन के मतानुसार कु चित पैर को उठाकर पीछे ले जाकर दूसरे पैर से स्वस्तिक करके भ्रमरी करने को 'तिरिप भ्रमरी' कहते है ।

'तिरिप' के अतिरिक्त रास सम्बन्धी वर्णन मे भाषा-कवियो ने लाग, डाट, राग, उपज, ध्रुवा, छन्द और जाति, ग्राम आदि नाम भी प्रयुक्त किये है जो सगीत साहित्य के अत्यन्त प्रचलित नाम हैं । स्वराकन-प्रणाली का प्रचार न होने के कारण रास के सगीत का यथार्थ रूप तो हमारे सम्मुख नही है किन्तु ध्रुवपद और जाति गायन रास-सगीत के प्राण है, इसमे कोई सदेह नही । ध्रुवपद का अपभ्रष्ट रूप आज के रास-सगीत मे पाया जाता है । रास-नृत्य के साथ रास-गायन की विशेष शैली और विशेष तालो का अभिन्न सम्बन्ध रहा है, इसे सिद्ध किया जा सकता है ।

शारङ्गदेव ने रास-ताल के आश्रय से प्रयुक्त किये जाने वाले रासक के चार भेद—विनोद, वरद, नन्द और कम्बुज बताये है ।[1] गान्धर्व वेद मे कम्बुज-रासक गायन के लिए 'राज-विनोद' ताल का उल्लेख किया है जिसमे २ गुरु होते हैं और १ प्लुत होता है ।[2]

तमिल के कुछ प्राचीन ग्रन्थो मे श्री कृष्ण द्वारा प्रस्तुत कुछ नृत्यो के नाम मिलते हैं । 'शिलपादिकारम्' ग्रन्थ मे 'अल्लियाम्' तथा 'कुरवई' नृत्यो का उल्लेख किया गया है जिन्हें भगवान् कृष्ण ने अपनी बाल्यावस्था मे किया था । उत्तर भारतीय साहित्य मे कृष्ण द्वारा आविष्कृत "कालिय-मर्दन नृत्य" बताया गया है, किन्तु इसका कोई भी शास्त्रीय आधार प्राप्त नही होता । 'गर्ग सहिता' के अध्याय ९ खण्ड २ मे १४ से १६वें श्लोक तक कृष्ण द्वारा कालिय-मर्दन का सक्षिप्त कथानक मिलता है, जिसमे कहा गया है कि श्री कृष्ण ताल सहित राग, गाने लगे और नट का

---

१ रासको रास तालेन स चतुर्धा निरूपित ।
विनोदो वरदो नन्द कम्बुजश्चेति शार्ङ्गिणा ॥ —सगीत रत्नाकर, अ० स० ३१८

२ राज विनोदे ताले स्याद्गुरुद्वन्द्वमथप्लुत ।
रासक कम्बुजस्तेन गीयते गीतकोविदै ॥ —गाधर्व वेद

मनोहर वेष धारण कर नृत्य करने लगे। नटराज की भाँति जब उन्होने ताण्डव नृत्य किया तो देवताओं ने पुष्प-वर्षा की और आनन्द के कारण वीणा, दुंदुभि तथा वेणु का वादन किया। ताल सहित पद-विन्यास[१] करते हुए भगवान् ने कालिय के सब फनो को तोड़ डाला। 'विष्णु पुराण' के कालिय-दमन वर्णन मे इसी घटना का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि श्री कृष्ण चन्द्र के चरणो की धमक से कालिय के प्राण मुख में आ गये, वह अपने जिस मस्तक को उठाता उसी पर कूद कर भगवान् उसे झुका देते। श्री कृष्ण चन्द्र के भ्रान्ति[२], रेचक[३] तथा दण्डपाद[४] द्वारा ताडन करने से वह महासर्प मूर्च्छित हो गया और उसने बहुत सा रुधिर वमन किया।

कालिय-दमन नृत्य का शास्त्रोक्त दृष्टि से उल्लेख किया जाय तो 'करण' और 'अगहारो' की दृष्टि से उसका कोई महत्व नही, केवल पदाघातो द्वारा लय के विशेष स्वरूपो का प्रतिपादन मात्र उसमे किया जा सकता है। भिन्न-भिन्न लयो में विशेष पदाघातो द्वारा यदि रगमच को झकझोर कर दर्शको के स्नायु-जाल को भयानक रस के सचार द्वारा स्पदित करके प्रभावित किया जा सकता है[५] तो सर्प के मस्तक पर पद-विन्यास द्वारा उसे मूर्च्छित किया जा सकता है, इसमे अविश्वास का कोई कारण नहीं। वर्तमान कत्थक नृत्य मे केवल पाद-विक्षेप, पद-विन्यास और पदाघातो का ही महत्व है।

मणिपुर मे रास-लीलाओ के चार प्रकार—वसन्त-रास, कुंज-रास, महा-रास और नित्य-रास प्रचलित है। वसन्त-रास वैशाख मास में किया जाता है, जिसमे राधा के समक्ष कृष्ण का आत्म-समर्पण होता है। कुंज-रास आश्विन मास में होता है जिसमे राधा और कृष्ण के सयोग शृगार-नृत्य के विभिन्न रूप दृष्टिगोचर होते हैं। महा-रास कार्तिक मास मे होता है, जिसमे कृष्ण और राधिका का विरह-नाट्य-नर्तन होता है। नित्य-रास विरह और मिलन की लीलाओ का अद्वितीय प्रदर्शन है, जिसमे आध्यात्मिक तत्त्वो का चरमोत्कर्ष भी दर्शको को प्राप्त होता है। इस नृत्य के लिए समय का कोई बन्धन नही। मणिपुर के अन्य नृत्य भी रास की वृत्ताकार शैली पर ही आधारित होते है। समस्त नृत्यो मे पाद-विक्षेप लास्य-गति पर निर्भर होता है। भ्रू-सचालन, हस्त-मुद्रायें तथा अगहार सभी कुछ लास्यमय रहता है। व्रज का रास भी लास्य का द्योतक है। स्थान-स्थान पर ताण्डव का प्रयोग रास के लास्यांग की वृद्धि

---

१ पाद भेद के अन्तर्गत पद-विन्यास या पाद-विक्षेप आता है, जिसमें पैरों को ऊपर उठा-उठा कर आगे पटका जाता है।

२. स्थायी-भाव में व्यभिचारी भाव से जब भ्रम उत्पन्न होता है तब उसे 'भ्रान्ति' संज्ञा दी जाती है। नाट्य के अन्तर्गत इसका प्रयोग प्रचुर मात्रा में मिलता है।

३ गर्दन पर पैर स्थित करके तथा कमर में हाथ बाँध कर यह मुद्रा बनाई जाती है।

४ 'दण्डपाद' एक चारी है, जिसमें पैर को अत्यन्त वेग के साथ छाती के आगे घुमा कर सामने की ओर फैला दिया जाता है। 'नूपुरचारी' और 'दण्डपाद चारी' करके हाथों को शीघ्रता से आविद्ध करने को 'दण्डपाद-करण' कहते हैं।

५ वनस्पतियों पर नृत्य का प्रभाव डाल कर अन्नामलाई विश्वविद्यालय ने हाल में ही एक सफल प्रयोग सम्पन्न किया है।

इसी प्रकार करता है जैसे किसी राग मे विवादी स्वर का प्रयोग उसके रूप को और भी आकर्पक वनाता है।

शार्ङ्गदेव ने लास्य के दस अग बताये हैं। चाली, चालिवड, लढि[1], सूक उरोगण, धसक, अगहार, ओचारक, विहसी और मन। नन्दिकेश्वर के अनुसार लास्य छुरित और यौवत केवल दो प्रकार का है। छुरित शब्द स्फुरित शब्द का अपभ्र श है। यौवत मे एक ही नर्त्तकी मधुर आवद्ध लीला द्वारा दर्शको को मत्र-मुग्ध कर देती है और स्फुरित मे नायक-नायिका परस्पर शृगार रस का सचार करते हुए लास्य के विविध अग प्रत्यगो का प्रदर्शन करते हैं। इसके अन्तर्गत जब चिबुक का प्रदर्शन किया जाता है तो चिबुक के स्फुरित और चल-सहत लक्षणो की बहुलता रहती है। शार्ङ्गदेव ने 'रत्नाकर' मे कहा है कि शीत के प्रवाह से अथवा ज्वर के प्रकोप से जब चिबुक का सचालन होता है तो उसे 'स्फुरित' कहते है और नारी के चुम्बन मे सलग्न ओष्ठो की तल्लीनता तथा उनकी चचलता से उत्पन्न चिबुक के सचालन को 'चलसहत' कहते है। भारत के वर्तमान् नृत्यो मे 'चलसहत' का प्रयोग अभद्र और अशिष्ट समझा जाता है, किन्तु पाश्चात्य जगत् के नृत्यो मे इसका प्रयोग पर्याप्त मात्रा मे मिलता है और शृगार रस के नृत्य का अभिन्न अग माना जाता है। रूमानिया के 'किस डान्स' (चुम्बन नृत्य) और 'पैरेनीटा' मे 'चलसहत' का प्रयोग काफी किया जाता है। स्फुरित से ही स्फुरिका[2] और स्फुरिता[3] का प्रादुर्भाव हुआ है। महर्षि भरत ने 'चल-सहत' लक्षण के स्थान पर 'समुद्ग' और स्फुरित के स्थान पर 'कम्पन' का उल्लेख किया है। हरिवश के ७७वें अध्याय मे रास-लीला के वर्णन में गोपियो द्वारा भगवान् कृष्ण के मुख-पान का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।[4]

यथार्थ मे रास एक अत्यन्त व्यापक शब्द है जिससे ससार के समस्त नृत्यो को न्यूनाधिक रूप मे पोषण प्राप्त हुआ है। वर्तमान कत्थक 'भरतनाट्यम'[5] कथकलि (कृष्णाट्टम) और मणिपुरी नृत्य-शैली का प्राचीन हल्लीशक, छलिक (छालिक्य या

---

१ लढि में तिरछे होकर कमर और हाथ का सचालन विलास सहित प्रदर्शित किया जाता है। वाली, मिश्र और जापान की गीशा युवतियों के नृत्यों में यह स्पष्ट परिलक्षित होता है।

२ पाद के एक विशेष आघात को 'स्फुरिका' कहते हैं। कु भ के मतानुसार समपाद में स्थित पैरों से सामने की ओर अथवा दाएँ, दाएँ चलना या पैर की उँगलियों के पृष्ठ भाग से पृथ्वी पर स्थित होने को स्फुरिका कहते हैं। पाश्चात्य 'वैल' नृत्य में इसका प्रयोग अत्यधिक रूप में दिखाई देता है। आकाश-चारी करते हुए भारतीय नर्तक भी इसका प्रयोग करते हैं।

३ लास्य का अग और देशीचारी है। पैरों से पीछे की ओर खिसकने को 'स्फुरिता' कहते हैं। पाश्चात्य 'वॉल रूम डान्स' की भित्ति स्फुरिता पर ही आधारित है।

४ "तास्तस्य वदन कान्त कान्ता गोपस्त्रियो निशि।
पिबन्ति नयनाक्षेपैर्गागत शशिन यथा॥"

५ 'भरत-नाट्यम्' का प्राचीनतम आचार्य, दक्षिण भारत की पौराणिक मान्यता के अनुसार, अर्जुन माना गया है। इस नृत्य में कृष्ण की लीलाओं का प्रदर्शन किया जाता है।

छलिक्य) चर्चरी और सम्पा[1] से क्या सम्बन्ध है, यह अनुसन्धान का विषय है।[2] सगीत के शास्त्रीय सिद्धान्त वर्त्तमान रास से विलग हो जाने के कारण वह ग्रामीण लोक-नृत्यो की शैली मे गिना जाने लगा है। राजस्थान का डडिया नृत्य, घूमर या झूमर, गुजरात का गोफा और गरबा, छत्तीसगढी का डडा नृत्य, सिक्किम का शाप-दोह नृत्य, वगाल का यात्रा, कश्मीर का हिरक, हिमाचल प्रदेश का मलका, मणिपुर का लाईहरोवा, आन्ध्र का कौलाटम् ये सभी नृत्य रास के अश मात्र हैं। कुण्डली नृत्य, तिरिप नृत्य, मडि भ्रमरी, चित्र कुण्डली, सूड, डोम्वी, श्री गदित, भाण भाणी आदि रास के उपनृत्य विस्तृत विवेचन की अपेक्षा रखते है।

भारतीय गुलामो द्वारा अरव मे रास के एक प्रकार 'रूमाल-नृत्य' को सत्रहवी शताव्दी मे प्रचार मे लाया गया। पाश्चात्य जगत् के वृत्त-नृत्यो मे 'पोल्का नृत्य' का उल्लेख मिलता है, जिसके वहाँ विविध रूप प्रचलित हैं। उत्तरी स्पेन मे 'पोलो-नृत्य' प्रसिद्ध है, जिस पर स्पेन के इतिहासकारों के अनुसार पूर्वीय प्रभाव है। उनका कहना है कि 'पोलो' मे प्रयुक्त पैरो की मुद्रा उनकी अपनी है और शारीरिक मुद्राओं पर पूर्वीय प्रभाव है। भारत के मणिपुर प्रदेश मे 'दी डान्स इन इण्डिया' के लेखक फौवियन वोवर्स के मतानुसार पोलो और रास दोनो का प्रचार एक ही समय मे हुआ, मेरी धारणा के अनुसार स्वीडन से 'पोलसका नृत्य', वोहेमिया के 'पोलका' और पोलैण्ड के 'पोलोनैस' नृत्य की उत्पत्ति पोलो नृत्य से ही हुई है। यूगोस्लाविया के 'लिजो', 'कोलो' और 'चाचक नृत्य' व्रज के रास और चर्चरी के अत्यन्त निकट हैं। मैक्सीकन भारतीयो के नृत्यो मे रास के पर्याप्त तत्त्व आज भी सुरक्षित है। ग्रीस का 'सर्किल डान्स' (गोलाकार नृत्य) और अमेरिका का 'स्क्वायर डान्स' (वर्गाकार नृत्य) व्रज के रास से अभिन्न प्रतीत होते हैं। वर्गाकार नृत्य मे एक वार मे पाँच सौ युगल तक भाग लेते है। एक नायक होता है जो वाद्य-यन्त्रो के समीप खडे होकर लय और धुन का सचालन करता है, तथा युगल वृन्दो को विभिन्न गतियो के लिए निर्देश देता है। यह नृत्य वहाँ ग्वालो, पशु-पालको अथवा पश्चिमी अमेरिका के निवासियो का समझा जाता है।

इस प्रकार व्रज के रास की यह नृत्य-सगीत परम्परा वडी महत्वपूर्ण है, जिसका अध्ययन करके रास के पुनर्गठन की अव अत्यधिक आवश्यकता है। रास के प्राचीन विशुद्ध गीत और नृत्य को आत्म-सात करके यदि वर्तमान रास-लीला पुष्ट होकर लोक-रजक वन सकी तो भारत के लिए यह गौरव की वात होगी और ससार को उसकी कला सहज ही आकृष्ट कर सकेगी।

---

१ महाराजा भोज (१०१०-१०५५ ई०) ने लास्य, ताण्डव, छलिक, सम्पा, हल्लीसक और रास ये छै प्रकार बताए हैं।

"तल्लास्यं ताण्डवम् चैव छलिक सपया सह।
हल्लीसक च रास च षट्प्रकार प्रचक्षते॥" —सरस्वती कण्ठाभरण

छान्दोग्योपनिषद् के अनुसार 'छलिक' अथवा 'छालिक्य' एक गाय शैली भी थी जिसके आविष्कारक भगवान् कृष्ण थे। हरिवंश में 'छलिक नृत्य' का वर्णन प्राप्त होता है। 'कथासरित्सागर' तथा 'मालविकाग्निमित्र' में भी छालिक्य का उल्लेख किया गया है।

: ३ :

संस्कृत साहित्य और रास-लीला

श्री कृष्णदत्त वाजपेयी, विश्वविद्यालय, सागर

प्राचीन ग्रन्थो मे रास के जो लम्बे वर्णन उपलब्ध हैं, उनमे से भरत मुनि के 'नाट्य शास्त्र' और हल्लीशक नृत्यो का उल्लेख पहले अध्यायो मे हो चुका है। इसलिए यहाँ हम मुख्य पुराणो मे वर्णित रास की चर्चा करेंगे। पुराणो मे सबसे प्राचीन 'हरिवश' है, जो अपने वर्तमान रूप मे ई० चौथी शताब्दी की रचना कही जा सकती है। इसके द्वितीय पर्व का बीसवाँ अध्याय 'हल्लीसक क्रीडन' नामक अध्याय है। इसमे कुल ३५ श्लोक है। रास सम्बन्धी वर्णन १५वें श्लोक से प्रारम्भ होता है। पहले श्लोक मे शरद-ऋतु की चाँदनी रात मे श्री कृष्ण की रमणेच्छा का कथन किया गया है।

> "कृष्णस्तु यौवन दृष्ट्वा निशिचन्द्रमसो वनम् ।
> शारदीं च निशां रम्यां मनश्चक्रे रतिं प्रति ॥"

बाद के श्लोको मे इसके निमित्त आयोजन, गोपियो का अपने-अपने घरो से आगमन तथा श्री कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन हुआ है। श्लोक २५ से २९ तक गोपियो के साथ श्री कृष्ण की रास-क्रीडा का वर्णन किया गया है—

> "तास्तु पक्ती कृतास्सर्वा रमयति मनोरमम् ।
> गायन्त्य कृष्णचरित द्वद्वशो गोपकन्यका. ॥२५॥
> कृष्णलीलानुकारिण्य- कृष्णप्रणिहतेक्षणा ।
> कृष्णस्य गतियामिन्यस्तरुण्यस्ता वरागना. ॥२६॥
> वनेषु तालहस्ताग्रै' कूजयन्त्यास्तथापरा ।
> चेरुर्वै चरित तस्य कृष्णस्य व्रजयोषित ॥२७॥
> तास्तस्य नृत्य गीत च विलासस्मितवीक्षितम् ।
> मुदिताश्चानुकुर्वन्त्य क्रीडन्ति व्रजयोषित ॥२८॥
> भावनिस्पदमधुर गायन्त्यस्ता वरागना ।
> व्रज गता सुख चेरुर्दामोदरपरायणा ॥२९॥"

ऊपर के वर्णन से ज्ञात होता है कि रास-नृत्य मे गोपियाँ एक घेरा बनाकर खडी हुई। उनके अगल-बगल एक-एक गोप था। पहले श्लोक की टीका करते हुए टीकाकार ने लिखा है—

"पंक्तीकृता मण्डलाकार पक्तिरूपेण स्थिताः ।
द्वन्द्वशो द्वाभ्या प्रदेशाभ्यां वर्तते गोप. कृष्णो यासा ताः यथोक्तं—
अगनामगनामतरे माधवो,
माधव माधवं चांतरेणांगना ।
इत्यमाकल्पिते मण्डले मध्यग',
सजगो वेणुना देवकीनन्दन. ॥"

दो-दो गोपियो के बीच एक-एक गोप (माधव) और दो-दो गोपो के बीच एक-एक गोपी—इस प्रकार के बने हुए मण्डल मे श्री कृष्ण वशी बजाते हुए नृत्य करते थे।

हरिवश के उपर्युक्त श्लोको से यह भी पता चलता है कि रास में कृष्ण जिस प्रकार के नृत्य और भाव-प्रदर्शन करते थे उसके अनुरूप ही गोपियाँ करती थी। नृत्य के साथ-साथ गायन भी होता था। श्लोक ३० से ३४ तक रति-क्रीडा का वर्णन है। हरिवश मे राधा या विशिष्टा सखी का—जिसके सम्बन्ध मे बाद के पुराणो मे लिखा है कि श्री कृष्ण उसके साथ अन्तर्ध्यान हो गये—कही उल्लेख नही मिलता। परन्तु श्री कृष्ण का रास के बीच से अन्तर्ध्यान हो जाना सम्भवत वास्तविक बात थी। हरिवश (२, २०, २५) की टीका मे 'अगना मगना' वाले श्लोक के आगे एक प्राचीन श्लोक उद्धृत है, जो इस प्रकार है—

"श्रुतिश्च पश्चावस्ते पुरुरूपा वपूंषि,
ऊर्ध्वा तस्थौ त्र्यवि रेरिहाणा।
ऋतस्य सद्म विचरामि विद्वान्,
महद्देवानाम सुरत्वमेकम् ॥"

रास करते-करते अकस्मात् अन्तर्ध्यान हो गए श्री कृष्ण के प्रति कोई गोपी कहती है—"इन कृष्ण की रीति तो विख्यात है कि रास के समय अपने शरीर के अनेक रूप करके ये एक-एक गोपी के तीन ओर अगल-बगल तथा सामने नाचें। उसके बाद इनके अन्तर्ध्यान हो जाने पर मैं अपने तीनो ओर स्तब्ध दृष्टि से देखती हुई मूक जैसी खड़ी रह गई। हे धर्म के सेतु विद्वान् कृष्ण! तुम्हारा यह कार्य तुम्हारे जैसे दैवी पुरुषो के लिए एक महान् निर्दयता का उदाहरण है।"

'हरिवश' के कुछ समय बाद ही रचित 'विष्णु पुराण' (अश ५, अध्याय १३) मे राससम्बन्धी वर्णन कुछ अधिक विस्तार से मिलते हैं। 'ब्रह्म पुराण' (अ० ८०, श्लोक १३-४२) मे भी वही वर्णन मिलता है जो विष्णु पुराण मे। 'हरिवश के समान 'विष्णु पुराण' मे भी कहा गया है कि शरच्चन्द्रिका को देखकर गोपियो के साथ क्रीडा करने की इच्छा भगवान् कृष्ण को हुई (श्लोक १५)। इसके पश्चात् गोपियो के आगमन का वर्णन है। शीघ्र ही कृष्ण के कहीं अन्यत्र चले जाने पर गोपियाँ, वृन्दावन मे विचरकर कृष्ण-लीलाएँ करती हैं। 'विष्णु-पुराण' में 'विशिष्टा सखी' का उल्लेख है। गोपियो को उसके चरण-चिन्ह दिखाई दिए, पर वह स्वय नहीं मिली। कुछ समय बाद श्री कृष्ण गोपियो के बीच प्रकट हो जाते हैं। अगले ११ श्लोको

(४८-५८) मे 'रास-गोष्ठी' का वर्णन किया जाता है। पहले गोपियाँ 'रास-मण्डल' नहीं बना सकीं, तब कृष्ण ने स्वय उसका निर्माण किया (४९-५०)। तब कंकणो की झंकार के साथ रास का प्रारम्भ हुआ, साथ ही शरद् ऋतु के अनुकूल काव्य और गेय गीत गाये जाने लगे। श्री कृष्ण चन्द्रमा, चाँदनी और कुमुद वन सम्बन्धी गीत गाने लगे और गोपियाँ कृष्ण के नाम का उच्चारण करती गईं (४८-५२)। इसके बाद नाच-गान से थकी हुई गोपियो के लीला-व्यापारो का कथन है (५३-५५)। अनन्तर श्री कृष्ण द्वारा रास के गेय पद गाये गये। गोपियाँ उन गीतो पर मुग्ध होकर उनकी सराहना करती रही। श्री कृष्ण की गति के अनुरूप ही गोपियो के ललित व्यापार होते थे।

'विष्णु पुराण' के बाद 'भागवत् पुराण' की रचना हुई। यद्यपि इसकी रचना-काल के सम्बन्ध मे विद्वान् एक मत नही तो भी उपलब्ध पुष्ट प्रमाणो के आधार पर भागवत का रचना-काल ई० छठी शताब्दी माना गया है। भागवत के दशम् स्कध मे पाँच अध्याय (२९ से ३३ तक) 'रास पचाध्यायी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमे से २९ और ३३ अध्याय को 'रास-क्रीडा-वर्णन अध्याय' कहा गया है। २९वे अध्याय के प्रारम्भ मे भगवान् की रमण-इच्छा, उनके द्वारा वेणु बजाना तथा गोपियो का आना वर्णित है (श्लोक १-४)। वशी-रव सुनकर गोपियाँ मुग्ध हो गई। उन्हे किसी अन्य वस्तु का ध्यान नही रहा। जो जिस काम मे लगी हुई थीं उसे छोडकर भाग दौडी। अपने पति, पिता, बन्धु, आदि के वर्जन करने पर भा वे नही रुक सकी (५-८)।

श्री कृष्ण के पास गोपियो के पहुँचने पर वे उनसे कहते है—"हे देवियो ! तुम्हारा स्वागत है, इस अँधेरी रात मे यहाँ क्यो आई ? तुम्हारे माता-पिता आदि तुम्हे ढूँढ रहे होगे। तुमने सुन्दर वन देख लिया, अब लौट जाओ।" इसके बाद वे उन्हे पति-सेवा धर्म का उपदेश देते है (१८-३०)। परन्तु गोपियाँ नही मानती, उनका उत्कट भक्ति देखकर भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं (४२-४३)। तब रास के प्रथम अश का आरम्भ होता है। इसका ३ श्लोको मे वर्णन है। नृत्य गान के साथ रति-क्रीडा का भी कथन हुआ है।

श्री कृष्ण के साथ रास-क्रीडा करते हुए गोपियों के मन मे अभिमान का सचार हुआ। वे अपने को ससार की स्त्रियो मे सर्वश्रेष्ठ समझने लगी। भगवान् उनका अभिमान नष्ट करने के हेतु रास से अन्तर्ध्यान हो गए। (श्लोक ४६-४७)।

तीसवें से बत्तीसवे अध्याय तक गोपियो के विलाप करके उत्कट दैन्य का तथा परिणामस्वरूप श्री कृष्ण के पुन प्रकट होने का वर्णन है। भगवान् गोपियो को लेकर यमुना-पुलिन पर आते है और उन्हे भक्ति-मार्ग का उपदेश देते हैं। गोपियो का विरह शान्त होता है, वे अपने प्रियतम को पाकर पुन गद्गद हो जाती हैं।

रास पचाध्यायी के अन्तिम (तेतीसवें) अध्याय मे श्लोक २ से २० तक रास का विस्तृत वर्णन मिलता है। उसके मुख्य अश को हम नीचे उद्धृत करते हैं—

"तत्रारभत गोविन्दो रासक्रीडामनुव्रतैः।
स्त्रीरत्नैरन्वितः प्रीतैरन्योन्याबद्धबाहुभिः ॥२॥

रासोत्सवः सम्प्रवृत्तो गोपीमडलमंडित ।
योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयो' द्वयो ।
प्रविष्टेन गृहीतानां कठे स्वनिकटं स्त्रियः ॥३॥
वलयानां नूपुराणांकिंकिणीनां च योषिताम् ।
स प्रियाणाम्भूच्छब्दस्तुमुलो रासमंडले ॥६॥
उच्चैर्जगुर्नृ त्यमाना रक्तकंठ्यो रतिप्रिया ।
कृष्णाभिमर्शमुदिता मद्गीतेनेदमावृतम् ॥६॥
काचित्समं मुकुंदेन स्वरजातीरमिश्रिता ।
उन्निन्ये पूजिता तेन प्रीयता साधुसाध्विति ।
तदेव ध्रुवमुन्निन्ये तस्यै मान च बह्वदात् ॥१०॥"

देर तक नृत्य, गान के बाद गोपियाँ गईं। कोई श्री कृष्ण के हाथ का सहारा लेकर, कोई उनके कन्धे का सहारा ले विश्राम की इच्छा प्रकट करने लगी (श्लोक ११-१५)। श्रम दूर होने के बाद पुन रास गोष्ठी शुरू हुई, जिसमे विभिन्न अगो के परिचालन तथा आभूषणो की झकार के साथ गोपियो ने भगवान् के साथ नृत्य किया—

कर्णोत्पलालकविटंककपोलघर्म—
वक्त्रश्रियो वलयनूपुर घोषवाद्यै ।
गोप्य समं भगवता ननृतु स्वकेश—
स्त्रस्तस्रोजो भ्रमरगायकरासगोष्ठ्याम् ॥१६॥"

आकाश मे देव स्त्रियाँ, चन्द्रमा आदि यह अनिवर्चनीय रास देख विस्मति हो गये (१७-१६)। बीसवें श्लोक मे भगवान् के द्वारा उतने ही रूप बनाकर, जितनी कि गोपियाँ थी, उनके साथ क्रीड़ा करने का कथन है। इसके बाद जल-विहार (श्लोक ११-२४) तथा वन-विहार (श्लोक २५-२६) का वर्णन कर अध्याय समाप्त किया गया है।

हरिवश, विष्णु, ब्रह्म तथा भागवत के उपर्युक्त रास सम्बन्धी वर्णन बहुत कुछ मिलते-जुलते है। हरिवश का वर्णन अन्य तीनो पुराणों की अपेक्षा सक्षिप्त है। उसमे तथा भागवत मे राधा का नाम नही है। विष्णु तथा ब्रह्म पुराणो में भी राधा का नाम नही है। केवल 'विशिष्टा सखी' का उल्लेख है। इन चारो पुराणों से रास के प्राचीन स्वरूप का पता चलता है। वह मण्डल या गोल घेरे में होता था। दो पुरुषो के बीच मे एक स्त्री और कभी-कभी दो स्त्रियो के बीच मे एक पुरुष इस प्रकार मण्डल बाँधकर नृत्य किया जाता था। नर्तकियाँ विशेष रूप से ककण, नूपुर आदि बजने वाले आभूषणो से अलकृत होती थी। नृत्य मे स्त्रियाँ पुरुषो का अनुकरण करती थी। साथ-साथ ऋतु के अनुकूल काव्य, गीत तथा अनेक प्रकार के ध्रुव आदिक स्वर गाये जाते थे।

इस प्रकार उक्त चारो पुराणो मे रास के साधारण वर्णन मिलते है। यद्यपि इन वर्णनो मे कहीं-कहीं रति का भी उल्लेख किया गया है, पर सक्षिप्त रूप मे। साथ

ही उसमे वह अश्लीलता नही है जो कुछ परवर्ती पुराणो मे मिलती है। इन परवर्ती पुराणो में सबसे अधिक ब्रह्मवैवर्त्त मे रास-क्रीडा को विलासिता का रूप दिया गया है। इस पुराण का प्रारम्भिक भाग लगभग ८०० ई० मे लिखा गया, पर इसका वर्त्तमान उपलब्ध स्वरूप १६वी शती मे बना। इसके 'ब्रह्म खण्ड' के पाँचवें अध्याय मे लिखा है कि गो-लोक के रास-मण्डल मे भगवान् कृष्ण के बाम पार्श्व से राधा का जन्म हुआ, क्योकि रास मे उत्पन्न होने के बाद वे भगवान् के सम्मुख दौड़ी, इससे उनका नाम 'राधा' हुआ—

"रासे सभूय गोलेके सा वधाव हरेः पुरः।
तेन राधा समाख्यातापुराविम्दिद्विनोत्तम ॥"

इसके बाद इस पुराण मे लिखा गया है कि किस प्रकार राधा के रोम कूपो से उन्ही के सदृश सुन्दरी लक्ष-कोटि गोपियो का जन्म हुआ (श्लोक ४०-४१)। फिर कृष्ण के रोम कूपो से सुन्दर वेश वाले ३० करोड गोप पैदा हुए। इसके बाद अनेक गाय-बैलो का जन्म हुआ।

ब्रह्मवैवर्त्त के श्री कृष्ण जन्म-खण्ड का २८वाँ अध्याय 'रास-क्रीडा' अध्याय है। इसमे रास का वास्तविक वर्णन तो नाम मात्र को हुआ, उसकी ओट मे कामुकता का ही विस्तृत वर्णन है। श्लोक ६ से १७ तक रास-मण्डल की सजावट का लम्बा-चौड़ा वर्णन है। श्री कृष्ण की मुरली-ध्वनि सुनकर पहले राधिका मोहित हुई, फिर उनकी ३३ सहेलियाँ निकली और उनके अनन्तर १६,००० अन्य गोपिकाओ का झुण्ड निकला, फिर १४,००० का दूसरा और फिर १३,००० का तीसरा झुण्ड आदि। राधा की ३३ सखियो मे से प्रत्येक हजारो गोपियो का नेतृत्व करती निकली। धीरे-धीरे ९ लाख गोपियाँ और उतने ही गोप रास-मण्डल मे एकत्र हो गए। इसके बाद अनेक प्रकार के सुरत का विस्तृत वर्णन किया गया है (श्लोक ४६-१७४)। २९वें अध्याय मे भी राधा-कृष्ण का सयोग वर्णन है। उसी भाँति ५४वें अध्याय मे फिर वैसी ही रास-क्रीडा का कथन किया गया है।

'गर्ग सहिता' के द्वितीय (वृन्दावन) खण्ड मे भी रास का लम्बा-चौडा वर्णन है। परन्तु उसमे विलासिता की नदी नही बहाई गई, जैसा कि ब्रह्मवैवर्त्त मे है।

'गर्ग सहिता' में पहले राधा-कृष्ण के सगम का कथन है, फिर चन्द्र-दर्शन के बाद वृन्दावन मे रासारम्भ का। रास-वर्णन के पहले वन का सुन्दर चित्रण किया गया है। रास-मण्डल मे पहले वन-बालिकाएँ, गोवर्धन-निवासिनी स्त्रियाँ, सयूथा यमुना तथा गगा आईं। इसके बाद अष्ट-सखियो तथा फिर ३२ सखियो के यूथ क्रमश आए। जितनी स्त्रियाँ, उतने ही रूप धारण कर श्री कृष्ण ने रास किया। अनेक भाँति के नृत्य-गायन आदि हुए। श्री कृष्ण ने वृन्दावन के बाद क्रमश तालवन, मधुवन, कामवन, कोकिलावन आदि में रास किया।

पुराणो एव महात्म्य ग्रन्थो के अतिरिक्त सस्कृत नाटको तथा काव्य ग्रन्थो मे रास के मनोरजक वर्णन मिलते हैं। यहाँ केवल कुछ का उल्लेख किया जाता है।

भास के 'बालचरित नाटक' (अक ३) मे हल्लीशक नृत्य के लिए कृष्ण का

वृन्दावन जाना कहा गया है। बाण भट्ट ने अपने ग्रन्थ 'हर्ष-चरित' में रासक गीतो का उल्लेख किया है। महाकवि माघ ने अपने 'शिशुपालवध' मे वृष्णीयो का वर्णन करते हुए लिखा है कि वे सगीत के और विशेषकर रास-नृत्य के बडे शौकीन थे। 'नाट्य-शास्त्र' के टीकाकार अभिनव गुप्त ने हल्लीशक वा रास के सम्बन्ध मे लिखा है कि यह नृत्य मण्डल में किया जाता था और इसमे अधिक से अधिक ६४ जोडे स्त्री-पुरुष नृत्य कर सकते थे—

"मंडलेन तु यन्नृत्य हल्लीसकमिति स्मृतम्।
अनेक नर्तकीयोज्य चित्रताललयान्वितम्।
आचतुःषष्टियुगलाद्रासकं मसृणोद्धतम्॥"

रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र ने स्वरचित 'नाट्य-दर्पण' मे लिखा है कि रासक मे १६, १२ या ८ नर्तकी नायिकाएँ होनी चाहिएँ, जो एक मण्डल मे बँधी हुई हो—

"षोडश द्वादशाष्टा वा यस्मिन्नृत्यतिनायिका।
पिण्डीबन्धादिविन्यासैं रासकं तदुदाहृतम्॥"

१२वी शती के रसिक प्रवर जयदेव के 'गीतगोविंद' मे तथा विल्वमगल-रचित 'कृष्णकर्णामृत' काव्य मे रास के सरस, सुन्दर वर्णन मिलते है। जयदेव का—

"रासे हरिरिह सरस विलासम्" तथा "विहरति हरिरिह सरस वसंते।
नृत्यति युवतिजनेन समं सखि विरहिजनस्य दुरन्ते॥"

किसे न मुग्ध कर लेगा? गीतगोविंद (१।४।१-७) मे रास मे तल्लीन कृष्ण तथा गोपियों का जैसा सुन्दर चित्रण किया गया है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

विलास-कला से पूर्ण रास का ऐसा सरस वर्णन कहाँ मिलेगा?

"पीनपयोधर भारभरेण हरिं परिरम्य सरागम्।
गोपवधूरनुगायति काचिदुदञ्चित पञ्चमरागम्॥२॥
कापि विलासविलोलविलोचन खेलन जनितमनोजम्।
ध्यायति मुग्धवधूरधिकं मधुसूदन वदन सरोजम्॥३॥
कापिकपोलतलेमिलितालपितुं किमपिश्रुतिमूले।
चारु चुचुम्ब नितम्बवती दयितं पुलकैरनुकूले॥४॥
केलिकला कुतुकेन च काचिदमुं यमुना जलकूले।
मञ्जुलवञ्जुल कुञ्जगतं विचकर्ष करेण दुकूले॥५॥
करतल ताल तरल वलयावलि कलितकलस्वनवंशे।
रास रसे सह नृत्यपरा हरिणा युवतिः प्रशसे॥६॥
श्लिष्यति कामपि चुम्बति कामपि रमयति कामपि रामाम्।
पश्यति सस्मित चारुपरामपरामनुगच्छति वामाम्॥७॥

विल्वमगल के दूसरे ग्रन्थ 'बालगोपाल स्तुति' मे भी रास के उल्लेख मिलते हैं। इस ग्रन्थ की सचित्र हस्तलिखित प्रतियाँ भी मिली है। इनमे १४वी १५वीं शताब्दी की गुजराती शैली मे रास के चित्र है। एक चित्र मे हाथो मे छोटे-छोटे दड

अविगत, आदि, अनत, अनूपम, अलख, पुरुष अविनासी ।
पूरण ब्रह्म, प्रगट पुरुषोत्तम, नित निज लोक विलासी ।।
जहाँ वृन्दावन आदि अजर, जहाँ कुञ्ज लता विस्तार ।
तहाँ विहरत प्रिया-प्रीतम दोऊ, निगम भृंग गुञ्जार ।।
रतन-जटित कालिंदी को तट, अति पुनीत जहाँ नीर ।
सारस-हस-चकोर-मोर खग कूजत कोकिल-कीर ।।
जहाँ गोवर्धन पर्वत मनिमैं, सघन कदरा सार ।
गोपिन मण्डल मध्य विराजत, निसि-दिन करत बिहार ।।"

श्री वल्लभाचार्य जी कृत 'सुबोधिनी' श्रीमद्भागवत की सुप्रसिद्ध टीका है। इसमे रास-पचाध्यायी की अत्यन्त मार्मिक व्याख्या की गई है। वल्लभाचार्य जी के मतानुसार भागवत की रास-पचाध्यायी मे वर्णित रास सारस्वत कल्प के कृष्णावतार का रास है, जो गिरिराज के निकटवर्ती चन्द्रसरोवर पर हुआ है। इस प्रकार उन्होने गोवर्धन-क्षेत्र को अवतरित वृन्दावन का अत्यन्त पुरातन रूप स्वीकार किया है। वृन्दावन मे यमुना का होना आवश्यक है। इसके सम्बन्ध मे वल्लभ सम्प्रदाय की मान्यता है कि सारस्वत कल्प मे यमुना की एक धार गिरिराज-चन्द्रसरोवर के निकट भी बहती थी, जिसके कारण वहाँ का जमुनावतो ग्राम प्रसिद्ध हुआ है। श्वेत वाराह कल्प का रास वर्तमान् वृन्दावन मे कालियदह-वशीवट के निकट हुआ है, जहाँ यमुना नदी आजकल भी प्रवाहित होती है। सारस्वत कल्प के रास का समय शरद-ऋतु और श्वेत वाराह कल्प के रास का समय वसन्त ऋतु मानी गई है। वल्लभ सम्प्रदायी वार्ता-साहित्य और पद-साहित्य दोनो मे ही रास और वृन्दावन का उल्लेख इसी मान्यता के साथ हुआ है। कुम्भनदास की वार्त्ता के 'भाव-प्रकाश' मे इस मान्यता की पुष्टि की गई है।[१]

ब्रजभाषा के भक्त-कवियो के रास सम्बन्धी कथन का आधार विविध पुराणोक्त कृष्ण-लीला, विशेष कर भागवत की रास-पचाध्यायी है, यद्यपि उन्होने कुछ मौलिक उद्भावनाएँ भी व्यक्त की हैं। कतिपय कवियो ने 'रास-पचाध्यायी' का सर्वांगपूर्ण वर्णन किया है, जब कि अधिक कवियो ने रास सम्बन्धी स्फुट पदो की रचना की है। समस्त रास-पचाध्यायी का कथन करने वाले कवियो मे सूरदास और नन्ददास के नाम विशेष प्रसिद्ध है। रास-सम्बन्धी स्फुट पदो की रचना ब्रजभाषा के

---

१ "श्री यमुना जी के प्रवाह सारस्वत कल्प में दो हते। एक तो जमुनावतो होइके आगरे के पास जात हतो और एक चीरघाट होइके श्री गोकुल। आगे दोऊ धारा एक मिलि सारस्वत कल्प में बहती। सो चीर घाट में धारा होइके गिरिराज आवती, तामों पचाध्यायी को रास परासोली में चद्रसरोवर ऊपर किये। और कालीदह के घाट तें हू श्री वृन्दावन कहत हैं। तहाँ हू वसीवट है। तहा अनेक श्वेत वाराह कल्प में पचाध्यायी को रास उहाँ ही किये हैं। और सारस्वत कल्प में शरद् ऋतु किए सो परासोली श्री गिरिराज ऊपर किये। पाछे वसन्त चैत्र वैशाख को रास केसी घाट पास धर्मोपट के नीचे किये। सो या प्रकार दोऊ ठिकाने। परन्तु मुख्य पचाध्यायी सारस्वत कल्प को रास गिरिराज को, —श्री कण्ठमणि जी शास्त्री द्वारा सम्पादित 'अष्टछाप', पृ० २००-२०२।

प्रायः सभी कृष्ण-भक्त कवियो ने की है। इस प्रकार व्रजभाषा में रास-विषयक विशाल साहित्य उपलब्ध है।

व्रजभाषा-कवियो के मुकुटमणि महात्मा सूरदास हैं। उनके रास सम्बन्धी प्राय २०० पद तो नागरी प्रचारिणी सभा के 'सूर-सागर' मे ही सकलित है। इनके अतिरिक्त वर्षोत्सव की कीर्तन पोथियो मे भी उनके तत्सम्बन्धी अन्य पद मिलते हैं। इतना होने पर भी उनको अपने कथन से सतोष नही है। वे कहते है—

"रास-रस रीति नहिं बरनि आवै ।
कहाँ वैसी बुद्धि, कहाँ वह मन लहौं, कहाँ यह चित्त जिय भ्रम भुलावै ।"

चाहे महात्मा सूरदास अपनी रास सम्बन्धी रचनाओ से सन्तुष्ट न हो, किन्तु कोई भी पाठक उनके इस प्रशसनीय प्रयास पर मुग्ध हुए विना नही रह सकता है। यद्यपि उन्होने अनेक पदो मे 'रास पचाध्यायी' का विशद् वर्णन किया है, तथापि कुछ स्वतन्त्र पदो मे उसका सक्षिप्त कथन भी किया है, ऐसा एक पद यहाँ दिया जाता है, जिसमे समग्र पचाध्यायी का सार आ गया है—

(राग विहागरौ)

"सरद चाँदनी रजनी सोहै, वृन्दावन श्री कुज ।
प्रफुलित सुमन विविध-रँग, जहँ-तहँ कूजत कोकिल-पुंज ॥
जमुना-पुलिन स्याम-घन सुन्दर, अद्‌भुत रास उपायौ ।
सप्त सुरनि वधान सहित हरि, मुरली टेरि सुनायौ ॥
थक्यौ पवन, सुर थकित भए, नभ-मण्डल, ससि-रथ थाक्यौ ।
अचल चले, चल थकित भए, सुनि धरनि उमगि धर काँप्यौ ॥
खग मृग मीन जीव जल-थल के, सव तन सुरति विसारी ।
सूखे द्रुम पल्लव फल लागे, नव-नव साखा झारी ॥
सुनि व्रज-वधू तज्यौ आरज-पथ, सुत-पति-नेह न कीन्हौं ।
प्रगट्यौ अग अनग, विकल भईं, तन-मन सब हरि लीन्हौं ॥
इक जेंवनार करत ही छाँडी, इक जेंवत पति त्याग्यौ ।
इक बालक पय पीयत सुवावति, प्रेम विवस तनु जाग्यौ ॥
जो जैसें, तैसैं उठि धाई, तन-मन सुरति विसारी ।
मुरलि-नाद करि टेर लई हरि, व्रज-नव-जुवति-कुमारी ॥
आंजत नैन अधर दुहुँ के बिच, सारंग-सुत तहँ लाग्यौ ।
मानहु अलि बैठ्यौ वधुक पर, पियत सुमन-रस पाग्यौ ॥
कटि-कचुकी, उरज लहँगा कसि, चरननि हार सँवार्‌यौ ।
उलटे भूषन अगनि साजे, फेर न काहू निहार्‌यौ ॥
चलीं सबै तिय आधी रतियाँ, जहँ नव कुज-विहा
आनि हजूर भई कानन मे, जहाँ स्याम सु
देखि सबै व्रज-नारि स्याम-घन, चितये
क्यों आईं वृन्दावन भीतर, तुम सव

तुम कुल-वधू भवन हीं नीकी, रैनि कहाँ सब ग्राई ।
ग्रपने ग्रपने घर पति-जन सों, कैसे निकस न पाई ।।
बेनु-सब्द स्रवननि मग ह्वै उर, पैठि हर्माहि लै ग्रायो ।
ग्रास तुम्हारी जानि चपलचित, चचल तुरत चलायो ।।
सपनो पुरुष छाँडि जो कामिनि, ग्रन्य पुरुष मन लावै ।
ग्रपजस होइ जगत जीवन भरि, बहुरि ग्रधम गति पावै ।।
ग्रजहुँ जाहु सब घोष-तरुनि फिरि, तुम तौ भली न कीन्ही ।
रैनि बिपिन नहिं वास कीजियै, ग्रबलानि कौं नहिं लीन्ही ।।
घर कैसे फिरि जांहि स्याम जू, तन इहई सब त्यागे ।
तुम ते कहो कौन ह्याँ प्रीतम, जा सँग मिलि ग्रनुरागे ।।
हम ग्रनाथ, ब्रजनाथ-नाथ तुम, चरन-सरन तकि ग्राई
निठुर वचन जनि कहौ, पीया तुम जानत पीर पराई ।।
दीन वचन सुनि स्रवन कृपानिधि, लोचन जल वरषाए ।
धन्य-धन्य कहि-कहि नँद-नन्दन, हरषति कठ लगाए ।।
हम कीन्हो ग्रपमान तुम्हारो, तुम नहिं जिय कछु ग्रान्यौ ।
सरिता जैसे सिधु भजे ढरि, तैसे तुम मोहि जान्यौ ।।
द्वादस कोस रास परमित भई, ताको कहा वखानौ ।
वोलि लई ब्रज-वधू विहँसि सब, तब मण्डल विधि वानौ ।।
पानि-पानि सौं जोरि जुवति, द्वै-द्वै विच स्याम विराजै ।
कचन-खभ खचित मरकत मनि, यह उपमा कछु छाजै ।।
ग्रगहि कोटि काम छवि लज्जित, मधि नायक गिरिधारी ।
नृत्य करत रस-वस भए दोऊ, मोहन-राधा-प्यारी ।।
व्रज वनिता मण्डली वनी यौं, सोभा ग्रधिक विराजै ।
नूपुर कटि किंकिनी चलत गति, ग्ररस-परस पर वाजै ।।
मोर-चन्द्रिका सिर पर सोहै, जब हरि रुनझुन नांचै ।
ग्रग-ग्रग प्रति ग्रौर-ग्रौर गति, कोटि मदन छवि राचै ।।
जमुना जल उलटी वही धारा, चन्दा रथ न चलावै ।
घानक ग्रतिहि वन्यौ मनमोहन, मन्मथ पकरि नचावै ।।
नृत्य करत रीझत मनमोहन, राधा कठ लगाई ।
रास बिलास करत सुख उपज्यो, सव वस किये कन्हाई ।।
ग्रतर ध्यान करत सुख वाढै, राधा वर सुखकारी ।
'सूरदास' प्रभु भक्त-वछलता, प्रकट करी गिरिधारी ।। १८१।।"

रास मे भाग लेने वाली गोपियो के परकीया होने के कारण लौकिक दृष्टि से विचार करने वाले व्यक्ति को रास का प्रयोजन उचित नही मालूम होता है , किन्तु भगवान् श्री कृष्ण की यह गूढ लीला लौकिक व्यापार है कहाँ ? रास वस्तुत ग्राध्यात्मिक विपय है ग्रौर इस पर इसी दृष्टिकोण से विचार करना चाहिए, तभी इसके मर्म को समझा जा सकता है । गोपियो द्वारा ग्रातुर भाव से श्री कृष्ण के पास

जाने का अभिप्राय जीवात्माओ का परमात्मा की ओर उन्मुख होना है। फिर भी सूरदास ने रास के बीच मे कृष्ण का विवाह करा कर लौकिक दृष्टि से भी इसे उचित बना दिया है। यह प्रसग श्री मद्भागवत मे नही है, बल्कि ब्रह्मवैवर्तपुराण में है। सूरदास ने इसका विस्तारपूर्वक कथन करते हुए कहा है कि जिसे व्यास मुनि ने रास कहा है, वह वस्तुत. श्री कृष्ण का गधर्व-विवाह है—

"जाकौं व्यास बरनत रास।
है गधर्व विवाह, चित्त दै सुनौ विविध विलास॥"

सूरदास-कृत रास सम्बन्धी अनेक उत्तमोत्तम पदो मे से कुछ ही पद यहाँ दिए जाते है, जिनमे काव्य के साथ सगीत के भी तत्त्व उपलब्ध हैं—

(राग केदारौ)

"आजु हरि अद्भुत रास उपायौ।
एकहिं सुर सब मोहित कीन्हे, मुरली-नाद सुनायौ॥
अचल चले, चल थकित भए सब, मुनिजन ध्यान भुलायौ।
चचल पवन थक्यौ नहिं डोलत, जमुना उलटि बहायौ॥
थकित भयौ चन्द्रमा सहित मृग, सुधा समुद्र बढायौ।
'सूर' स्याम गोपिन सुखदायक, लायक दरस दिखायौ॥"११४०॥

(राग विहागरौ)

"नृत्यत हैं दोउ स्यामा-स्याम।
अग मगन पिय तै प्यारी अति, निरखि चकित ब्रज-बाम॥
तिरप लेत चपला सी चमकति, झमकत भूषन अंग।
या छवि पर उपमा कहुँ नाहीं, निरखत विवस अनग॥
श्री राधिका सकल गुन पूरन, जाके स्याम अधीन।
संग तै होत नहीं कहुँ न्यारे, भए रहत अति लीन॥
रस-समुद्र मानौ उछलति भयौ, सुन्दरता की खानि।
'सूरदास' प्रभु रीझि थकित भए, कहत न कछु बखानि॥"१०६०॥

सूरदास के पश्चात् रास-वर्णन के लिए नन्ददास का नाम उल्लेखनीय है। उनकी 'रास पचाध्यायी' ब्रजभाषा साहित्य की अनुपम रचना है। कोमल-कात पदावली और सुललित शब्द-योजना द्वारा उन्होने माधुर्यपूर्ण काव्य-कौशल का जो परिचय दिया है, उसी के कारण यह किंवदती प्रसिद्ध हो गई है—

"और कवि गढिया, नददास जडिया।"

उन्हे स्वय भी अपनी इस कृति से बड़ा ममत्व था। उन्होने इसके अन्त मे लिखा है—

"यह उज्जल रस-माल, कोटि जतनन करि पोई।
सावधान ह्वै पहिरौ, इहि तोरौ मति कोई॥"

रास-पचाध्यायी का आरम्भ करते हुए उन्होने शरद्-यामिनी का इस प्रकार वर्णन किया है—

"सहज माधुरी वृन्दावन सब दिन सुखदाई ।
तदपि रंगीली सरद समय मिलि अति छबि पाई ॥
ज्यों अमोल नग जगमगाय सुन्दर जराव संग ।
रूपवंत गुनवंत भूरि भूषन भूषित अंग ॥
रजनी मुख सुख देत ललित मुकुलित जु मालती ।
ज्यों नव जोबन पाइ, लसति गुनवती बालती ॥
मंद-मंद चलि चारु चन्द्रिका अरु छबि पाई ।
उझकति हैं पिय रमा-रमन कौं मनु तकि आई ॥"

इसी मनमोहिनी शरद् निशा में रासोत्सव का आयोजन करने के लिए श्री कृष्ण ने अपनी मधुर मुरली बजाई, जिसे सुनते ही व्रज-गोपियाँ अपने-अपने घरों में से निकल कर उस वन्य प्रदेश की ओर दौड़ पड़ी, जहाँ वह मदमाती वंशी बज रही थी। गोपियों के आगमन पर श्री कृष्ण की दशा का सुन्दर कथन देखिये —

"तिनके नूपुर नाद सुने, जब बचन सुहाए।
तब हरि के मन नैन, सिमटि सब स्रवनन आए ॥
रुनुक-झुनुक पुनि भली भाँति सों प्रगट भई जब ।
पिय के अंग-अंग सिमटि मिले हैं रसिक नैन तब ॥"

गोपियों के साथ रास करते हुए श्री कृष्ण की शोभा का वर्णन कवि ने एक अनोखी उत्प्रेक्षा के साथ इस प्रकार किया है—

"नव मरकत-मनि स्याम, कनक मनिगन ब्रजबाला ।
वृन्दावन कौं रीझि मनों पहराई माला ॥
साँवरे पिय संग निर्त्तत चंचल ब्रज की बाला ।
जनु घन-मण्डल मंजुल खेलति दामिनी माला ॥"

रास-नृत्य के समय कवि ने श्री कृष्ण और गोपियों के वस्त्राभूषण, वाद्य-यन्त्र और पद-ध्वनि के सम्मिलित नाद का जो मार्मिक कथन किया है, उसमें काव्य-सौन्दर्य के साथ नाद-सौन्दर्य भी उभर आया है। देखिये—

"नूपुर, कंकन, किंकिनि, करतल मंजुल मुरली ।
ताल, मृदंग, उपंग, चंग एकहि सुर जुरली ॥
मृदुल मुरज-टंकार, तार झंकार मिली धुनि ।
मधुर जंत्र के तार, भँवर गुंजार रली पुनि ॥
तैसिय मृदु पद-पटकनि, चटकनि करतारन की ।
लटकनि, मटकनि, झलकनि कल कुंडल हारन की ॥
हार हार में उरझि, उरझि बहियाँ में बहियाँ ।
नील पीत पट उरझि उरझि बेसर नथ महियाँ ॥"

नन्ददास-कृत 'रास-पंचाध्यायी' के अतिरिक्त स्फुट पदों में भी रास का मनो-

हुए कथन किया गया है।[1]

सूरदास और नन्ददास के अतिरिक्त अष्टछाप के अन्य कवियो ने भी मुक्तक-पदों मे रास का सुन्दर वर्णन किया है। इन कवियो मे कृष्णदास के पद सख्या और उत्तमता की दृष्टि से उल्लेखनीय है। उनके बाद परमानन्ददास, कुम्भनदास, गोविन्द स्वामी, चतुर्भुजदास और छीत स्वामी के तत्सम्बन्धी पद है। इन समस्त रचनाओ में काव्य के साथ सगीत का सौन्दर्य भी दर्शनीय है। यहाँ पर उनके कुछ पद दिए जाते है—

कृष्णदास—

(राग कान्हरौ)

"सावल मृदुल मनोहर मूरति नव सुवन जुवतिन सँग गावत।
राग-रंग-रस रसिक रसकनी राधा-मोहन प्रेम वढ़ावत॥
नूपुर रूनत, ववरिणत कटि-किंकिनि सुर वर सों मिलि वेणु वजावत।
तान-मान वधान अनागत, अवघर तान भेद उपजावत॥
कौतुक रास विलास सुधानिधि, कमलनयन मनसिज-सर लावत।
त्य मान प्यारी प्रिय पद रज, 'कृष्णदास' न्योछावर पावत॥"

(राग गौरी)

नाँचत गोपाल सग, प्रेम सहित रास-रग,
ततथेई ततथेई, करत घोष नागरी।
रूप-रासि अग-अग, तत तान वर सुघग,
लास्य भेद निपुन कोक रस उजागरी॥
लेत सुलप उरप-तिरप अवनि उरज वदन फिरत,
मुखरित मनि-दाम मिले अलग लाग री।
'कृष्णदास' प्रभु गिरिधर मोहि लिए, सुवस किए,
तरनि-तनया तीर वधू गुनन आग री॥"

(राग भैरव)

निरतत गिरिधरन सग रग भरी नागरी।
वृन्दावन रम्य जहाँ विहरत पिय-प्यारी,
तहाँ मण्डल रचि रास रसिक जुवती वन वाग री॥
बाजत अनहद मृदग, ताल विना गति सुगध,
अग-अग लग्यौ निरखि जग्यौ रग-राग री।
तत्थेई शब्द करत, सकल नृत्य भेद सहित,
सुलफ मची उरप-तिरप लेत नागरी॥
बाँह जोड़े करी कु वारी नवल पिय सों नवल प्यारी,
दामिनी सी दरसै रूप-गुन आगरी।
प्रेम पु ज गोकुलनारी, समि सी सुभग चारी,
विरहत विपिन विलास वड़े जु भाग री॥
खग-मृग पसु-पछी निरख, मोहित भए चर-अचर,
थिथकि रह्यौ चन्द्र नलिन सकल भाग री।
मान पट विहार तेते निमिष हू न जाने केते,
'नन्ददास' प्रभु सग रैन रग जाग री॥

परमानन्ददास—

(राग केदारो)

"रास रच्यौ बन कुँवर-किसोरी ।
मंडल विमल सुभग वृन्दावन, जमुना-पुलिन स्याम घन घोरी ।
बाजत बेणु-रबाब-किन्नरी, कुकन-नूपुर-किंकिनी सोरी ।
ततथेई ततथेई सब्द उघरि पिय, भलें बिहारी बिहरिनि जोरी ॥
बरूहा मुकट चरन तट आवत, धरें भुजन मे भामिनि कोरी ।
आलिंगन-चुम्बन-परिरंभन 'परमानंद' डारत तृन तोरी ॥"

(राग मालव)

"रास विलास गहें कर पल्लव एक एक भुज ग्रीवा मेली ।
द्वै द्वै गोपी, बिच-बिच माधौ, नर्तत संग सहेली ॥
टूटि परी मोतिन की माला, ढूँढ फिरीं सब ग्वारी ।
बिगलित कुसुम-माल, कच बिलुलित, निरखि हँसे गिरधारी ॥
सरद विमल नभ चंद बिराजै, निर्तत नंद किसोरा ।
'परमानंद' प्रभु बदन सुधानिधि, गोपी नैन चकोरा ॥"

कुंभनदास—

(राग सारंग)

रास मे गोपाल लाल नाँचत मिलि भामिनी ।
अंस-अंस भुजनि मेलि, मंडल-मधि करत केलि,
कनक-बेलि मनु तमाल स्याम-संग स्वामिनी ॥
उरप, तिरप, लाग, डाट अग्र-ताता-थेई-थेई थाट,
सुघर सरस राग तैसी-ए सरद जामिनी ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर नटवर-वपु-भेष-धरें,
निरखि-निरखि लज्जित कोटि काम-कामिनी ॥"

गोविन्द स्वामी—

(राग मालव)

"नाँचत लाल गोपाल रास मे सकल ब्रज-बधू संगे ।
गिडिगिडि तत थुंग तत थुंग थेई थेई भामिनी रति रस रंगे ॥
सरद विमल उडुराज विराजत गावत तान तरंगे ।
ताल मृदंग झाझ अरु झालरि बाजत सरस सुघंगे ॥
सिव विरंचि मोहे सुर सुनि सुनि, सुर-नर मुनि गति भंगे ।
'गोविंद' प्रभु रस रास रसिक मनि मानिनी लेत उछंगे ॥"

चतुर्भुजदास—

(राग केदारा)

"अद्भुत नट-भेष धरें जमुना तट स्याम सुन्दर,
गुन निधान गिरिधरधर रास-रंग नाचैं ।

जुवति-जूथ संग मिलि गावत केदार राग,
अधर वेनु मधुर-मधुर सप्त सुरनि साँचे ॥
उरप-तिरप लाग-डाट तत-तत-तत-थेई-तथेई-थेई,
उघटत सद्वादावलि गति भेद कोऊ न बाँचें ।
'चत्रभुज' प्रभु बन विलास, मोहे सब सुर प्रकास,
निरखि थक्यो चद रथहि पच्छिम नहिं खाँचें ॥"

छीत स्वामी—

(राग ईमन)

"लाल-संग रास-रस लेत मान रसिक रवनि,
ग्रग्रता, ग्रग्रता, तत तत तत थेई थेई गति लीने ।
सरिगमपधनी, गमपधनी धुनि सुनि व्रजराज कुँवर-गावत री ॥
अतिगति अतिभेद सहित तानति ननननननन ग्रनिगनि गति लीने ।
उदित मुदित सरद चद, बंद छुटे कंचुकी के,
वैभव भुव निरखि-निरखि कोटि काम हीने ॥
विहरत बन रास-विलास, दपत्ति वर ईपद हास,
'छीत-स्वामी' गिरिधर रस-वस करि लीने ॥"

अष्टछापी कवियो के अतिरिक्त वल्लभ-सम्प्रदायी अन्य कवियो ने भी रास के स्फुट पदो की सुन्दर रचना की है। इनमे से कुछ कवियो के पद देखिये—

आसकरन—

(राग पूर्वी)

"निर्तत गोपाल लाल, तरनि तनया तीरे।
जुवती जन सग लिएँ, मन्मथ-मन करपि किएँ,
अग-अग सुखद किएँ, राजत बलवीरे ॥
लावन्यनिधि गुन-आगर, कोककला-गुन सागर,
त्रिविध-ताप हरति सीतल समीरे।
'आसकरन' प्रभु मोहन नागर गुन निधान,
सगीतसार रिझवत व्रजबधू सवै पटकत पट पीरे ॥"

वल्लभ सप्रदाय की सुप्रसिद्ध कवयित्री गगाबाई ने 'विट्ठल गिरधरन' की छाप से बड़ी सुन्दर रचना की है। उसके रास-विषयक पद देखिये—

(राग केदारो)

"भूपन सजे साँवल अग।
लाडिली वर रवन जू को लिए हैं हरि सग ॥
रच्यो रास-विलास कानन रसिक वर नवरंग।
कला नटवर धरत जब कछु देखि लजति अनंग ॥
वेणु-धुनि सुनि थकित मुनिगन, गति लेत थेई-थेई थु ग।
श्री 'विट्ठल गिरधरन' की बलि जाऊँ ललित त्रिभंग ॥"

"आजु नदनद मुखचन्द वन राजै ।
जटित मनि मुकट ग्रौर सुभग कुण्डल चटक, बसन पट पीत, भ्रु व मटक छाजै ।।
रास मे रसिक वर, ललित सगीत स्वर, मधुर मुरली मृदग ताल बाजै ।
श्री 'विट्ठल गिरधरन', कुरिणत नूपुर चरन, सुनत भई घोष तियन थकित आजै ।।"

गदाधर मिश्र—

(राग षट्)

"आज व्रजराज को लाल ठाडो सखी, ललित सकेत-बट निकट सोहै ।
देख री देख अनिरेख या भेष कों, मुकुट की लटक त्रिभुवनिहि मोहैं ।।
स्वेद कन झलक झुकी सी पलक कछु, प्रेम की ललक रस रास कीये ।
धन्य बड भाग वृषभान नदनि, राधिका अस पर बाहु दीये ।।
मनि जटित भूमि रही नव लता झूमि रही, नव कुंज छबि पुंज कहि न जाई ।
नन्द-नन्दन चरन परसि हित बन मानों, मुनिन के मनन मिलि पाँति लाई ।।
महाअद्भुत रूप सकल रस भूप, या नन्द-नन्दन बिन कछु न भावै ।
धन्य हरिभक्त जिनकी कृपा तें सदा, कृष्ण गुन 'गदाधर मिश्र' गावै ।।"

वल्लभ सप्रदाय के अतिरिक्त चैतन्य सप्रदाय के व्रजभाषा कवियो ने भी रास के स्फुट पदो की रचना की है। चैतन्य सप्रदाय का अधिकाश साहित्य सस्कृत और वगला भाषा मे है। इस सप्रदाय के व्रजभाषा कवियो मे सबसे अधिक प्रसिद्ध सूरदास मदनमोहन और गदाधर भट्ट है। इनके रास-विषयक पद देखिये—

सूरदास मदनमोहन—

(राग मालकोष)

"चलियै जु नेंक कौतुक देखियै, रच्यौ है रास मण्डल,
राधे ! हौं आई हूं तुमहि लैन ।
मृद-मद घसि अंग लगाय, मुकट काछिनी बनाय,
मुरली पीताम्बर विराजत, इहिं छवि मोपै कहि न परै वैन ।।
सब सखि मिलि नाचति-गावति, ताल मृदग मिलि बजावति,
नृत्य करैं मध्य, मूरति मानो मैन ।
'सूरदास मदनमोहन' हँसति कहा हो जू, पाउं धारियै,
जो पै सुख पियो चाहो नैन ।।"

गदाधर भट्ट—

(राग केदार)

"आजु मोहन रची रास रस मण्डली ।
उदित पूरन निसानाथ निर्मल दिसा देखि दिनकर सुता सुभग पुलिनस्थली ।।
बीच हरि बीच हरिनाक्ष माला बनी, तरुनता पिच्छ जनु कनक-कदली रली ।
पवन बस चपल दल ढुलनि सी देखियति चारु हस्तक भेद भाँति भारी भली ।।

चरन विन्यास कर्पूर कुंकुम धूरि, पूरि रही दिसि बिदिस कुंजवन की गली।
कुंद मंदार अरविंद मकरंद मद कुज-पुंजिन मिले मंजु गुंजत अली॥
गान रस तान के बान बेध्यौ विस्व विषपान आनि अधिमान मुनि ध्यान रति दलमली।
अधर गिरिधरन के लागि अनुराग के जगत बिजई भई मुरलिका काकली॥
रसभरे मध्य मण्डल बिराजत खरे नन्दनन्दन कुंवर वृषभानु की लली।
देखि अनिमेष लोचन 'गदाधर' जुगल लेखि जीय अपनी भाग महिमा फली॥

महाप्रभु वल्लभाचार्य और चैतन्य महाप्रभु के अनुयायी कवियो ने प्राय कृष्णावतार के भावनापरक आध्यात्मिक रास का कथन किया है। उनके समय मे अनुकरणात्मक रास भी प्रचलित हो गया था, किन्तु उसमे सिद्ध कोटि के सत-महात्मा ही भाग लेने के अधिकारी समझे जाते थे। इन सम्प्रदायो के भक्तों की मान्यता थी कि भगवान् श्री कृष्ण की स्वेच्छा से की गई इस रहस्यात्मक लीला का अनुकरण यदि साधारण ससारी जीव करेगा, तो वह अपराध का भागी होगा। वृन्दावनदास कृत बगला ग्रन्थ 'चैतन्य भागवत' मे लिखा है कि एक बार चैतन्य महाप्रभु ने नवद्वीप मे रास-नृत्य करने का आयोजन किया था। उसमे भाग लेने के लिए उच्चकोटि के भक्त भी इसलिए राजी नही हुए कि वे अपने को इसका अधिकारी नही समझते थे। उसमे स्वय चैतन्य महाप्रभु ने लक्ष्मी का और नित्यानन्द प्रभु ने योगमाया का वेश धारण कर नृत्य किया था। जब चैतन्यदेव सन्यासावस्था मे जगन्नाथपुरी में निवास करते थे, तब वहाँ 'जगन्नाथ वल्लभ' नाटक का अभिनय हुआ करता था। किन्तु श्री कृष्ण लीला-विषयक अनुकरणात्मक रास मे उन्होने कभी भाग लिया हो, इसका वर्णन नही मिलता है। ब्रज मे जिन महात्माओ ने यह रास प्रचलित किया था, उनमे श्री वल्लभाचार्य जी के नाम की भी किवदती है, किन्तु इसकी प्रामाणिकता सदिग्ध है। 'वार्ता-साहित्य' के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इस सम्प्रदाय के आरम्भिक भक्तजन भी अनुकरणात्मक रास मे भाग लेने से इसलिए बचते थे कि उनकी मान्यता के अनुसार उससे श्री नाथ जी की स्वेच्छा से की गई लीला मे व्यर्थ हस्तक्षेप करना था। वे उसमे तभी भाग लेते थे, जब स्वय श्री नाथ जी उन्हें आदेश देते थे।

चतुर्भुज दास की वार्ता के पचम प्रसग मे उल्लेख है कि बार आन्यौर मे गोसाई विट्ठलनाथ जी के चतुर्थ पुत्र गोकुलानाथ जी के समक्ष रासधारियो ने रास करने की इच्छा प्रगट की थी। इसके लिए गोकुलनाथ जी ने अपने बडे भाई गिरिधर जी से आज्ञा माँगते हुए उनसे भी उसमे सम्मिलित होने की प्रार्थना की। गिरिधर जी ने उत्तर दिया कि वे गोसाई जी की स्वीकृति बिना न तो वहाँ रास करने की आज्ञा दे सकते हैं और न स्वय उसमे सम्मिलित हो सकते हैं। इस पर चन्द्रसरोवर पर रास किया गया। वार्ता मे लिखा है कि उस रास मे स्वय श्रीनाथ जी गिरिधर जी को लेकर उपस्थित हुए। जब इसका समाचार गोसाई विट्ठलनाथ जी को मिला, तब उन्होने कहा कि इस प्रकार के आयोजन मे श्री नाथ जी को श्रमित करना उचित नही है। वे अपनी इच्छानुसार रास करते हैं। इस वार्ता मे यह भी लिखा है कि उस समय तक गोसाई विट्ठलनाथ जी के अन्तिम पुत्र घनश्याम जी का जन्म नही हुआ था।[1] इससे सिद्ध होता है कि स० १६२८ तक ब्रज मे रासधारियो की मण्डलियाँ

---

१. अष्टछाप, पृ० ४८२-४८८।

बन गई थी, जो अनुकरणात्मक रास किया करती थी, किन्तु उनको वल्लभ सम्प्रदाय की ओर से प्रोत्साहन नही मिला था ।

अनुकरणात्मक रास का सम्बन्ध प्रकट, अर्थात् वर्त्तमान वृन्दावन से माना जाता है । किन्तु 'वार्त्ता-साहित्य' से ज्ञात होता है कि वल्लभ सम्प्रदाय के आरम्भिक भक्तो ने इस वृन्दावन के प्रति उपेक्षा ही नही, वरन् अरुचि भी दिखलाई थी । अधिकारी कृष्णदास की वार्ता मे 'भावप्रकाश' मे लिखा है कि उन्होने गोसाई जी की इच्छा के विरुद्ध वृन्दावन मे जाकर कष्ट उठाया था । उस समय तक वहाँ पर एक भी वल्लभ सम्प्रदायी वैष्णव नही था, इसलिए उन्होने ज्वर मे प्यासा रहना स्वीकार किया, किन्तु वृन्दावन निवासी किसी व्यक्ति का पानी नही पिया ।[1] इन घटनाओ के बाद ही वल्लभ सप्रदाय मे रासलीला विशेष रूप से प्रचलित हुई और वर्तमान वृन्दावन मे भी वल्लभ सप्रदायी बैठको और मदिरो का निर्माण हुआ । इस समय भी गोवर्धन और गोकुल की अपेक्षा वृन्दावन का महत्व वल्लभ सप्रदाय मे कम माना जाता है ।

अनुकरणात्मक रास के प्रति वृन्दावन के जिन महात्माओ ने आरम्भ से ही रुचि दिखलाई थी, उनमे हित हरिवश, स्वामी हरिदास और श्री व्यास जी के नाम विशेष प्रसिद्ध है । हित हरिवश जी द्वारा प्रवर्तित राधावल्लभ सप्रदाय मे अन्य सम्प्रदायो की भाँति गोलोक स्थित सूक्ष्म एव भावनाजन्य वृन्दावन स्वीकृत नही है, वरन् इसमे भूतल पर स्थित वृन्दावन ही नित्य-विहार का आधार माना जाता है । इसी वृन्दावन में राधा-कृष्ण का रास-विहार होता है, जिसके कारण यह भौतिक होते हुए भी नित्य वृन्दावन का महत्व प्राप्त करता है । हित हरिवश जी और उनके सप्रदाय के महात्माओ की वाणियो मे इसी भौतिक किन्तु नित्य वृन्दावन मे होने वाले दिव्य रास का वर्णन किया गया है ।

श्री हित हरिवश जी ब्रज-भाषा के बडे रस सिद्ध कवि हुए हैं । उन्होने रास के भी अत्यन्त सरल पदो की रचना की है । उनके पद देखिये—

(राग सारग)

"आज बन नीको रास बनायौ ।
पुलिन पवित्र सुभग यमुना तट मोहन वेनु बजायौ ॥
कल ककन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि खग-मृग सचु पायौ ।
जुवतिनु मण्डल मध्य स्याम घन सारग राग जमायौ ॥
ताल-मृदग-उपग-मुरज-ढफ मिलि रस सिंधु बढ़ायौ ।
विविध विसद वृषभानु नन्दिनी अङ्ग सुघग दिखायौ ॥
अभिनय निपुन लटकि लट लोचन भृकुटि अनग नचायौ ।
तार्थेई तार्थेई धरति नौतन गति पति ब्रजराज रिझायौ ॥
सकल उदार नृपति चूडामणि सुख वारिधि वरषायौ ।
परिरभन-चुम्बन-आलिगन उचित जुवति जन पायौ ॥

1. भावप्रकाश वाली ८४ वैष्णवन् की वार्ता ।

वरषत कुसुम मुदित नभनायक इन्द्र निसान बजायौ ।
जै श्री 'हित हरिवंश' रसिक राधापति जस वितान जग छायौ ॥"

(राग कल्याण)

"स्याम सग राधिका रासमण्डल बनी ।
बीच नन्दलाल ब्रजबाल चंपक बरन ज्यौं घन तड़ित बीच कनक मर्कत मनी ॥
लेत गति मान ततथेई हस्तक भेद सरिगमपधनि ये सप्त सुर नन्दिनी ।
निर्त्त रस पहिर पट नील प्रकटित छबी बदन जनु जलद मे मकर की चदिनी ॥
राग रागिनी तान मान सगीत मत थकित राकेश नभ सरद की जामिनी ।
जै श्री 'हित हरिवंश' प्रभु हंस कटि केहरी दूरि कृत मदन मद मत्त गज गामिनी ॥"

स्वामी हरिदास जी वृन्दावन के विरक्त सत और सगीत-कला के महान् आचार्य थे । ऐसा समझा जाता है, उन्होने अपने सगीत की देन से अनुकरणात्मक रास को विशेष कलापूर्ण बना दिया था । वे इस रास के प्रवर्त्तको मे माने जाते हैं, किन्तु उनकी वाणी मे रास विषयक पद अधिक सख्या मे नहीं मिलते है । उनके इस सम्बध का पद देखिये—

(राग कल्याण)

"कुंज बिहारी नाँचत, नँचावत लाड़िली नीके ।
औघर तान धरैं श्री स्यामा, ततथेईततथेई बोलत संग पी के ॥
तांडव, लास्य और अग को गनैं, जे-जे रुचि उपजति जी के ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कौ भेद सरस बन्यौ और गुन परे फीके ॥"

श्री हरिराम जी व्यास तो रास के अनन्य प्रेमी महात्मा थे । नाभा जी कृत 'भक्तमाल' मे लिखा है, एक बार रास मे नृत्य करती हुई राधा जी के स्वरूप का नूपुर खुल गया था । व्यास जी ने उसी समय उसे अपने जनेऊ से बाँध कर कहा कि इसका भार जन्म भर ढोया, किन्तु काम यह आज आया है ।

व्यास जी ने रास सम्बन्धी अनेक सुन्दर पदो की रचना की है । उनके एक बडे पद मे रास का विस्तारपूर्वक कथन है, जो 'रास पचाध्यायी' के नाम से प्रसिद्ध है । यह सुन्दर पद किसी लिपिक की भूल से सूरदास के पदो के साथ उन्ही की नाम-छाप से लिखा गया होगा, जो भ्रम से महात्मा सूरदास का समझा जाता है । यहाँ तक कि काशी नागरी प्रचारिणी सभा के सुसपादित 'सूरसागर' मे भी यह छप गया है । इसका कुछ अश इस प्रकार है—

(छन्द त्रिपदी)

"सरद सुहाई आई राति । दस दिसि फूलि रही बन-जाति ।
देखि स्याम मन सुख भयौ ॥
ससि-गो-मडित जमनाकूल । बरषत विटप सदा फल-फूल ।
त्रिविध पवन दुख-दवन है ॥
राधा-रवन बजायौ बैन । सुनि धुनि गोपिन उपज्यौ मैन ।
जहाँ-तहाँ तें उठि चलीं ॥

चलत न दीनौ काहु जनाव। हरि प्यारे सौं बाढ़्यौ भाव।
रास-रसिक गुन गाइहौं ।।
एक दुहावत तें उठि भगी। और चलीं सोवत ते जगी।
उत्कठा हरि सौं बढ़ी ।।
उफनत दूध न धर्यो उतारि। सीझी थुली चूल्हैहि डार।
पुरुष तज्यौ जेंवत हु तें ।।
पय प्यावत बालक धरि चली। पति सेवा कछु करी अनभली।
धर्यौ रह्यौ भोजन भलौ ।।
तेल उबटनौ न्हैबो भूल। भागनि पाई जीवन-मूल।
रास रसिक गुन गाइहौं ।।
नव कुकुम जल बरसत जहाँ। उडत कपूर-धूरि जहँ-तहाँ।
और फूल-फल को गनै ।।
तहाँ स्यामघन रास जु रच्यौ। मर्कतमनि कचन सौं खच्यौ।
सोभा कहत न आवही ।।
जोरि मडली जुवतिनि बनी। द्वै-द्वै बीच आपु हरि धनी।
अद्भुत कौतुक प्रगट कियौ ।।
घू घट मुकट बिराजत सिरन। ससि चमकत मनौ कौतिक किरन।
रास रसिक गुन गाइहौं ।।
भूषन बाजत-ताल मृदग। अङ्ग दिखावत सरस सुघग।
रग रह्यौ न कह्यौ परै ।।
ककन, नूपुर, किंकिनी, चुरी। उपजत धुनि मिस्रित माधुरी।
सुनत सिराने स्रवत-मन ।।
मुरली, मुरज, रवाव, उपग। उघटत सबदि बिहारी सग।
नागर सब गुन आगरी ।।
गोपिन मडल मडित स्याम। कनक नील मनि जनौ अधिराम।
रास रसिक गुन गायहौं ।।
पग पटकत लटकत लट बाहु। भौंहन मटकत हँसत उछाहु।
अञ्चल चचल झूमका ।।
मीन कुडल ताटक बिलोल। मुख सुखरासि कहै मृदु बोल।
गडनि मडित स्वेद-कनि ।।
घोंरी डोरी बिलुलित केस। घूमत लटकत मुकट सुदेस।
कुसुम खसे सिर तें घने ।।
कृष्न-वधू पावन गुन गाइ। रीझत मोहन कठ लगाइ।
रास-रसिक गुन गाइहौं ।।
उलटि बह्यौ जमुना को नीर। बालक-बच्छ न पीवत खीर।
राधा - रवन ठगे सबै ।।

गिरिवर तरवर पुलकित गात। गोधन थन ते दूध चुचात।
सुन खग-मृग मुनिव्रत धर्‍यौ॥
फूली मही, फूल्यौ गति पौन। सोवत ग्वाल तजत नहिं मौन।
रास-रसिक गुन गाइहौं॥
राग-रागिनी मूरतिवत। दूलह-दुलहिन सरद-वसंत।
कोक-कला संगीत-गुरु॥
सप्त सुरनि की जात अनेक। नीकै मिलवति राधा एक।
मन मोह्यौ हरि कौ सुघर॥
छन्द ध्रुवनि के भेद अपार। नाँचत कुँवरि मिलै झपतार।
सबै कह्यौ सगीत मे॥
सरस सुमति धुनि उघटत सबद। पिकन रिझावत गावत सुपद।
रास रसिक गुन गाइहौं॥
कह्यौ भागवत सुक अनुराग। कैसें समझै विनु बड़भाग।
श्री गुरु सकल कृपा करी॥
'व्यास' आस करि बरनौं रास। चाहत हौं वृन्दावन बास।
करि राधे इतनी कृपा॥
निजु दासी अपनी करि मोहिं। नित प्रति स्यामा सेऊँ तोहिं।
नव-निकुज सुख-पु ज मे॥
हरवसी, हरिदासी जहाँ। मोहि करुना करि राखौ तहाँ।
नित्य विहार अधार है॥
कहत सुनत बाढ़ै रस-रीति। स्त्रोतहिं वक्तहिं हरि-पद प्रीति।
रास-रसिक गुन गाइहौं॥"

उनके रास सम्बन्धी स्फुट पद भी देखिए—

(राग सारंग गूजरी)

"नाँचति वृषभान कुँवरि हंससुता-पुलिन-मध्य,
हस-हसिनी मयूर मंडली बनी।
गावत गोपाललाल, मिलवत झपतार ताल,
लाजत अति मत्त मदन कामिनी-अनी॥
पदिक लाल कठमाल, तरल तिलक भाल झलक,
स्रवन फूल, वर दुकूल नासिकामनी।
नील कंचुकी सुवेस, चपकली कलित केस,
मुखरित मनि दाम, बाम कटि सुकाछिनी॥
मरकतमनि बलय राव, मुखर नूपुरनि सुभाय,
जावकजुत चरननि नखचंद्रिका घनी।
मदहास, भ्रू विलास, रास-लास सुखनिवास,
अलग लागि लेति सुघर राधिका धनी॥

काम-अंध, कितव-बध, रीझि रहे चरन गहे,
साधु - साधु कहत राधिका गनी ।
भेटति गहि बाहु मूल, उरज परस भई फूल,
'व्यास' बचन सानुकूल रसिक जीवनी ॥"

निम्बार्क सम्प्रदायी महात्माओं मे श्री हरिव्यास देव की रास सम्बन्धी ब्रज-भाषा रचनाएँ उल्लेखनीय है । उनका एक पद देखिये—

"रास में नृत्यत री ! रसभीने ।
प्यारी प्यारे रूप उज्यारे दोउ गरबहियाँ दीने ॥
थेई-थेई रट सुघट उघटहीं सुरसघट परवीने ।
उरप तिरप मे तुवट सुलप थट अलग लाग दट लीने ॥
थु कट थु थु कट अपट झपट झट, झा झाँ झुकटत झीने ।
'श्री हरिप्रिया' भीदी बीली भीं, न न न न न न न न कीने ॥"

हरिव्यास देव जी के शिष्य रूपरसिक जी ब्रजभाषा के प्रसिद्ध वाणीकार हुए हैं । उनका रास सम्बन्धी एक पद देखिये—

(राग विहागरौ)

"राजत रास रसिक मन-रजन ।
अति सुन्दर गुन रूप मनोहर दिए ग्रीवा कर कजन ॥
गौर-स्याम अनुरूप अङ्ग रति काम कोटि मद अव गजन ।
चलवनि चपल नैन मे मिलवनि मान सहज सुख-सजन ॥
मधुर बचन मुखरचन थेई-थेई सचन सुगति मति-मजन ।
भृकुटि विलास विभेदन पितपन मिथुन विथा जु विभजन ॥
कलित केलि कमनीय कुँवर की निरखि थकित भए खजन ।
'रूपरसिक' अद्भुत अनूप-रस वढ्यौ विपुल पुल पजन ॥"

निम्बार्क सम्प्रदाय के श्री वृन्दावनदेव जी का भी एक पद देखिये—

(राग कनडौ)

"नाचैरी ! दोउ बाहाँ जोरी ।
इत नँदनदन रसिक लाडिलो उत वृषभानकिसोरी ॥
गौर-स्याम भुज गहैं परस्पर निरखि उपम उपजत मति भोरी ।
सोभा-सर लाल नील कमल मनौ मिले करत झकझोरा झोरी ॥
मुकुट लटक पट चटक कटक कर चरन पटक मृदग गति बोरी ।
तत्त खिरिरिरि तात न न न न सखी सुघरि उघटति चहुँ ओरी ॥
अलापत रागिनी राग तान श्रुति लागि रही एकैसुर डोरी ।
'वृन्दावन' प्रभु धुनि सुनि थिर चर मोह्यो जात न कोरी ॥"

स्वामी हरिदास जी की शिष्य परम्परा के कवियो ने भी रास का सुन्दर वर्णन किया है । उनमे से श्री विहारिनदास जी और नागरीदास जी के कुछ पद देखिये—

बिहारिनदास जी—

(राग केदारो)

"राजत रास रसिक रस रासे।
आस पास जुवती मुखमण्डल मिलि फूली कमला से॥
मध्य मराल मिथुन मनमोहन चितवन आतुरता से।
वचन रचन सुर सप्त नृत्य गति मदन मयक विकासे॥
बाजत ताल मृदग अङ्ग संग मव मधुर सुर हासे।
घूँघट मुकट अटक लटकत नट अभिनय भृकुटि विलासे॥
वारति कुसुम सुगध देखि सखी आनन्द हिए हुलासे।
तृण तोरति, जोरत छिन-छिन छवि विपुल 'बिहारिन दासे'॥"

नागरीदास जी—

(राग केदारो)

"रसिक रसिकनी किसोर नृत्यत रगभीने।
गौर सुभग स्याम नटवर वपु वेष वनै तत ठुमक थेई-थेई-थेई उघटत गति लीने।
कोक सगीत सुघर गावत सुख सर्वोपरि तान तिरप लेत प्यारी पहिरे पटभीने।
अधर दसन द्युति प्रकास झलक झलक भ्रू-विलास तान सुरन चोरत चित नवल नेह नवीने।
रीझि रचन मोहि रहै धाइ चपल-चरन गहै लए लाल ललना हँसि अ स बाहु दीने।
'दासिनागरि' नवेलि नागर नित करत केलि आनन्द रसझेलि खेल पूरन प्रवीने।"

नाभा जी कृत 'भक्तमाल' मे राम प्रेमी कई महात्माओ के नाम मिलते है। इनमे विट्ठल विपुल, अलि भगवान्, घमण्डदेव और नारायण भट्ट के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। श्री विट्ठल विपुल तो रास-रस मे ऐसे तल्लीन हुए कि उसके आनन्द मे उन्होने अपना भौतिक शरीर ही छोड दिया। अलि भगवान् रामोपासक महात्मा थे। उन्होने वृन्दावन मे रास-नृत्य देखकर अपने भगवान् राम को भी रास-विहारी कहना आरम्भ कर दिया और रास की भावना मे ही रम गए। घमण्ड देव निम्बार्क सप्रदाय के और नारायण भट्ट चैतन्य सम्प्रदाय के विख्यात महात्मा हो गए हैं। इन दोनो के नाम रास के विस्तार के लिए प्रसिद्ध है।

व्रज के पुनरुद्धार और उसके गौरव की वृद्धि करने मे जिन महात्माओ ने प्रबल प्रयास किया है, उनमे नारायण भट्ट जी का नाम सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। उन्होने पुराणोक्त कृष्ण-लीला के विस्मृत पुण्य-स्थलो का उद्धार किया और अनेक ग्रन्थो की रचना द्वारा उनका महत्व प्रगट किया। व्रज की यात्रा और रास-लीला के प्रचार एव प्रसार के कारण तो उनका नाम सदा के लिए अमर हो गया है।

श्री हित हरिवश जी, स्वामी हरिदास जी और श्री व्यास जी द्वारा रास को जो लोकप्रियता प्राप्त हुई, उसके विस्तार का श्रेय नारायण भट्ट जी को है। हित हरिवश जी ने रास को लोक-प्रिय बनाने के लिए वृन्दावन मे रास-मण्डल बनवाया था, जो व्रज मे कदाचित रास का प्रथम रगमच था। श्री नारायण भट्ट ने व्रज के अनेक

स्थानो मे रास-मण्डलो का निर्माण कराया, जिससे रास के व्यापक प्रचार का मार्ग प्रशस्त हुआ।

नारायण भट्ट जी के पश्चात् रास के प्रचार मे सभी वैष्णव सम्प्रदायो के सत-महात्माओ ने योग दिया। उनके प्रोत्साहन से व्रज के रासधारियो ने मण्डली बनाकर अपनी कला का प्रदर्शन करना आरम्भ कर दिया। वे राधा-कृष्ण की विभिन्न लीलाओ के प्रदर्शन द्वारा भक्तो को आनन्द प्रदान करने लगे। इस प्रकार रास के प्रचार से राधा-कृष्णोपासना का भी व्यापक प्रचार होने लगा।

राधावल्लभ सम्प्रदाय के अनेक भक्तो ने रास सम्बन्धी पदो की रचना के साथ ही साथ रास के प्रचार का भी स्तुत्य प्रयत्न किया है। इनमे चन्दसखी और चाचा वृन्दावन दास के नाम विशेष उल्लेखनीय है। चन्दसखी जी के विषय मे प्रसिद्ध है कि वे सतो की जमात और रास-मण्डली के साथ भ्रमण करते हुए वैष्णव भक्ति का प्रचार किया करते थे। उन्होने अनेक भजन, लोकगीत और पदो की रचना की है। उनके नाम की छाप "चन्दसखी भज बालकृष्ण छबि" के अगणित भजन व्रज, राजस्थान, बुन्देलखड आदि प्रान्तो मे प्रसिद्ध है। चन्दसखी के रास सम्बन्धी पद देखिये—

(राग पचम)

"ए दोऊ निर्तत नवल कमल मंडल में अंसनि पर भुज दीयें री।
गावत, मोद बढ़ावत, भावत सग सहचरी लीयें रीं॥
बाजत ताल-मृदग-बाँसुरी, गति सों मिल तन कीयें री।
बरषत रग, अनद विमोहत, निरखि थकित रति जीयें री॥
काहू सुधि न रही तन-मन की, प्रेम-सुधा-रस पीयें री।
'चदसखी' दपति-छवि सजनी, सदाई बसौ मेरे हीयें री॥"

चाचा वृन्दावन दास जी व्रजभाषा के बडे समर्थ साहित्यकार हुए हैं। उन्होने विपुल साहित्य का निर्माण कर व्रजभाषा के भक्ति-काव्य की समृद्धि की है। उन्होने रास-सम्बन्धी अनेक पदो के अतिरिक्त रास-छद्म आदि विपुल रचनाएँ की हैं, जिनके आधार पर रासधारी गण राधा-कृष्ण की विविध लीलाओ का प्रदर्शन करते हैं।

चाचा वृन्दावन दास कृत रास-छद्मो के अतिरिक्त व्रजवासी दास कृत 'व्रज-विलास' और नारायण स्वामी कृत् 'व्रजविहार' का भी रास-लीलाओ मे उपयोग किया जाता है। 'व्रजविलास' मे कृष्ण-लीला के सभी प्रसगो का प्रबन्ध शैली मे सरल रीति से वर्णन किया गया है, इसलिए यह ग्रन्थ रासधारियो के बडे काम का है। आजकल जो रास-लीलाएँ होती है, उनमे प्राचीन भक्त-कवियो की वाणियो के साथ चाचा वृन्दावन दास जी और व्रजवासी दास जी की रचनाओ का प्रचुरता से उपयोग किया जाता है।

: ५ :

भारतीय चित्रकला में रास के दृश्य

श्री जगन्नाथ अहिवासी,

प्राध्यापक · कला-विभाग, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी

चित्र और नृत्य का सम्बन्ध पुराना है। चित्र को नृत्य का ही एक अग माना गया है। कहा भी है—'यथा नृते तथा चित्रे' ऐमी दशा मे रास जैसे प्राचीन नृत्य के चित्र-निर्माण की ओर भारतीय चित्रकला का आकर्पण बहुत स्वाभाविक है। वस्तुत भारतीय चित्रो का मूल नृत्य है, उसकी अतिरजित भाव-भगिमाओ के द्वारा भावो की प्रेपणीयता होती है।

आदिम काल से ही मनुष्य नृत्य का प्रेमी रहा है। इतना ही नही, उसे चित्र मे उतारने मे भी उसकी प्रवृत्ति दीख पडती है। चि० आनन्दकृष्ण ने कुछ वर्प पहले काशी से प्राय सत्तर अस्सी मील दूर एक निर्जन स्थान पर लिखनिया नामक एक गुफा देखी। यह भित्ति-चित्रो मे भरी है और इसमे आदिम मनुष्य के अनेक चित्र हैं, जो सम्भव है, प्राक्-ऐतिहासिक काल के हो। इनमे एक चित्र मे हाथ मे हाथ डाले एक टोली नृत्य मे लगी है। अलग, जानवर का चेहरा लगाए एक व्यक्ति उसे देख रहा है, अथवा ताल दे रहा है।

ऐतिहासिक काल मे भी नृत्य के चित्रो की कमी नही। जहाँ भी भित्ति-चित्र मिले हैं, नृत्य का एक न एक दृश्य आ ही गया है। अजन्ता की प्रसिद्ध गुफाओ में इस प्रकार के दो-तीन प्रसिद्ध चित्र हैं। इन सभी आलेखनो मे एक विशेष प्रकार की थिरकन या गति है। एकाध स्थल पर तो नर्त्तकी नृत्य मे भूली हुई सी जान पड़ती है।[1] इसी काल वाली बाघ की गुफाओ मे भी नृत्य का एक बडा ही मार्मिक आलेखन है।

प्राय आठवी सदी वाले सित्तन्नवासल के चित्रो मे भी नर्तकी का एक चित्र बहुत प्रसिद्धि पा चुका है। इसमे नर्तकी दूसरी ओर बडे झोक के साथ घूमना ही चाहती है, जिससे चित्र की चारुता बहुत बढ गई है। तजोर मे पूर्व चोल कालीन बृहदीश्वर के प्रसिद्ध मन्दिर मे प्राय दसवी शती वाला नर्तकी का एक चित्र इसी प्रकार का है। इसमे भी नर्तकी की बडी तेज गति जान पडती है।

इसके बाद जैन चित्रित ग्रन्थों का युग आता है, जिसमे पश्चिमी भारतीय चित्रकारो ने जैन धर्म सम्बन्धी अकनो मे कोशा नामक प्रसिद्ध नर्तकी की कथा मे भी

---

१ अजन्ता की गुफाओं में हल्लीसक नृत्य का भी एक चित्र है। —सम्पादक।

बहुत लोकप्रियता प्राप्त की है। इसमे भी उसकी भाव-भगिमा देखने योग्य होती है। अन्य चित्रो मे भी कभी-कभी नृत्य के दृश्य आते है।

पन्द्रहवी-सोलहवी शती वाले प्रासादो मे जो सबसे ऊपरी कक्ष होता था, उसकी छत पर, चित्र अथवा मूर्तियो के द्वारा नृत्य का दृश्य बनाने की परम्परा थी। चित्तौड के महल मे ऐसा दृश्य मूर्तियो मे है और दतिया के महलो मे चित्रो मे।

इस प्रकार भारतीय चित्रकला के पास नृत्य के चित्रो की पुरानी परम्परा थी। इसी पृष्ठभूमि मे रास के चित्र आते है।

प्राय सोलहवी शती की दूसरी पचीसी से राजस्थानी शैली का प्रादुर्भाव होता है। यही समय कृष्ण-भक्ति के व्यापक प्रचार का था। वस्तुत. पुष्टिमार्गी कृष्ण-भक्ति का राजस्थानी चित्रो के उत्थान और विकास मे बडा हाथ जान पड़ता है। राजस्थानी शैली का मेरुदण्ड ही पुष्टिमार्गीय कृष्ण-भक्ति है। इस प्रकार इस महान् शैली मे कृष्ण-लीला और उसके अन्तर्गत रास के चित्रो का बार-बार उपस्थित होना स्वाभाविक ही है। परम्परावादी चित्रकार को नृत्य के चित्रणो की जैसी दाय मिली थी, उसने अपनी भावनाओ को इस प्रकार प्रकट करने मे तनिक भी कठिनाई न पाई, अतः रास के अनेक चित्रणो मे वह सफलतापूर्वक अपनी भक्ति-भावनाओ को व्यक्त कर सका है।

पन्द्रहवी शती मे ही भारतीय चित्रो मे कृष्ण-भक्ति का प्रभाव स्पष्ट रूप से दीखने लगता है, जिसके फलस्वरूप इस काल मे पश्चिमी भारतीय चित्रकारो ने भक्त बिल्वमगल-रचित 'बाल-गोपाल स्तुति' के एव महाकवि जयदेव-विरचित 'गीतगोविन्दम्' के अनेक सचित्र ग्रन्थ प्रस्तुत किए होगे, जिनमे से कुछ प्राप्त भी हुए है।[1] विशेष रूप से 'गीतगोविन्दम्' वाले चित्रो मे एक बात यह दर्शनीय है कि प्रसगो मे ऐसे दृश्य आते हैं, जिनमे आकृतियाँ नृत्य करती जान पडती हैं। एकाध दृश्य मे तो रास के चित्र है ही। इन चित्रो मे से कुछ डॉ० आनन्द कुमार स्वामी ने अपने बोस्टन म्यूज़ियम की पत्रिका एव डॉ० एम० जे० मजूमदार ने ओरियण्टल सोसाइटी की पत्रिका मे प्रकाशित किये है। डॉ० मजूमदार ने एक इसी प्रकार के गीतगोविन्द वाले चित्र बम्बई विश्वविद्यालय की पत्रिका मे भी प्रकाशित किये थे। इन चित्रो मे एक बात स्पष्ट रूप से देखने मे आती है, कृष्ण और सखियो के मुख-मण्डल पर एक स्वर्गीय मुस्कान दिखला सकने मे चित्रकार अत्यन्त सफल हुआ है। नृत्य की गति को तो उसने कागज पर उतारा है ही।

इसी परम्परा मे प्रारम्भिक राजस्थानी शैली मे भी 'गीतगोविन्दम्' अथवा बाल-गोपाल स्तुति के चित्र उसी प्रकार बनते रहे। सोलहवी शती के अन्त मे ऐसे आलेखन हुए, जिनमे से कुछ हमे उपलब्ध हैं। आश्चर्य का विषय है कि इन चित्रो मे भी अनेक उदाहरणो मे सारी की सारी आकृतियाँ जैसे किसी नृत्य की लय मे नाचती हुई सी जान पडती है, मानो सारी कथा किसी गीति-नाट्य के द्वारा दिख-

---

[1] 'गीतगोविन्दम' का एक महत्त्वपूर्ण सचित्र प्राचीन प्रति, ब्रज साहित्य-मण्डल के सग्रहालय में भी है, जिनमें रास-नृत्य के भी चित्र है। —सम्पादक

लाई जा रही हो। वहुत सम्भव है कि इन आलेखनो का मूल रास, रसिया या स्वाँग, जैसे दृश्य काव्यो मे हो, और उनसे प्रभावित होकर ही चित्रकार ने उन्हे एक स्थायी रूप प्रदान कर दिया हो। इन चित्रो मे केवल मानव-आकृतियाँ ही नही, उनके वस्त्र, पेड-पौधे आदि भी नृत्य करते से जान पडते है।

इन्ही के वीच रास का दृश्य भी आ जाता है। इन रास-चित्रणो मे कलाकार एक दूसरे ही माध्यम का प्रयोग करता है—सारा दृश्य मानो आकाश से देखा जा रहा हो। फलत सारा दृश्य एक परिधि के रूप मे दिखलाया गया है। आकृतियो मे एक सखी है और एक कृष्ण। ये सव जैसे उस पहिए की परिधि से जुडे हुए है। पहिए का स्वरूप दे देने से इस आलेखन मे एक नई जान या गति आ जाती है मानो कोई चक्र निरन्तर चल रहा हो। इस प्रकार रास के सनातन स्वरूप को भी दर्शाया गया है। ऐसा एक अच्छा उदाहरण स्व० न्हानालाल चमनलाल जी मेहता के सग्रह 'गीत-गोविन्दम्' चित्रावली मे भी है।

'गीतगोविन्दम्' के परवर्ती चित्रो एव अन्य अवसरो पर भी रास का दृश्य अकित करने मे इस परम्परा का पालन किया गया है। कुँवर सग्रामसिह जी के जयपुर स्थित सग्रह मे गीतगोविन्द की जो चित्रावली है, उसमे एक अथवा दो वार रास के ऐसे चित्र सामने आते हैं। इनमे एक वात और दर्शनीय है। ऊपर एक ओर कृष्ण एक सखी का हाथ पकडे हुए इस वृत्त से जैसे छिटक कर वाहर जा रहे है। इससे रास की घूमती हुई गति और भी वढ़ जाती है। ऐसे ही एक और आलेखन मे हम एक ओर एक मानिनी को किनारे की ओर वैठी पाते हैं। इससे एक दूती रास मे चलने के लिए आग्रह कर रही है। कही रास का क्रम दूसरी प्रक्रिया से दिखलाया गया है। यहाँ दृश्य के पीछे एक वड़ा सा वृत्त वनाया गया है, जो मानो चाँदनी का, जिसमे रास-लीला हुई, एक प्रतीकात्मक चित्रण है। इसके आगे वशी वजाते हुए कृष्ण है और उनके दोनो ओर इधर और उधर रसविह्वल गोपियो का भुण्ड है। सारा का सारा दृश्य एक अलौकिक मादकता से परिप्लावित है।

ऊपर दिए हुए ये सारे ही उदाहरण मेवाड के है और प्राय महाराणा राज-सिह के काल मे तैयार हुए जान पड़ते हैं। महाराणा की कृष्ण-भक्ति मे निष्ठा जगत् प्रसिद्ध है। इसी काल मे नाथद्वारा की स्थापना हुई थी। फलस्वरूप मेवाड़-क्षेत्र एव मेवाड की चित्रकला पर उसका एक व्यापक प्रभाव पडना स्वाभाविक था। वही प्रभाव रास एव अन्य वैष्णव चित्रणो मे स्फुट हुआ दीखता है।

नाथद्वारा की स्थापना से वहाँ भी चित्र-शैली का एक स्वतन्त्र केन्द्र स्थापित हुआ, जिसका केन्द्र-विन्दु पुष्टिमार्गीय कृष्ण-भक्ति थी। वहाँ चित्रकारो के घराने के घराने आज तक कृष्ण-लीला को रगमय और रूपमय वनाने मे अपने जीवन को सफल कर रहे हैं। इन्ही के अन्तर्गत रास-लीला के भी चित्रण है। ऐसा ही एक चित्र डॉ० आनन्द कुमार स्वामी तथा श्री अर्धेन्द्रकुमार गाँगुली ने अपनी 'राजपूत पेन्टिग्स' मे प्रकाशित किया था। इसमे समारोह रास का दृश्य चल रहा है। सारा का सारा समुदाय अगणित गोपियो से भरा हुआ है। वस्तुत कम ही भारतीय चित्र ऐसे होंगे जिनमें

असख्य की भावना इस प्रकार साकार की गई होगी। ऊपर देवगण पुष्प-वृष्टि करते नही अघाते।

भारत कला-भवन मे भी इसी शैली के दो-एक चित्रो मे रास की भावना को भली भाँति उपस्थित किया गया है। यहाँ एक चित्र है, जिसमे रास मे जो सखियाँ दिखलाई गई है, उनमे प्रत्येक के ऊपर उनके नाम भी दिए गए हैं, जो महाप्रभु वल्लभाचार्य-कृत सुबोधिनी टीका पर आधृत है। अट्ठारहवी शती मे अन्य क्षेत्रो मे भी रास के चित्रो की कई अभूतपूर्व सृष्टि हुई। इसमे महाराज जयपुर के निजी सग्रह मे एक पट-चित्र अपने आप मे अनोखा है। यह प्राय दस हाथ लम्बा और छ-सात हाथ ऊँचा अकन है। आकृतियाँ प्राय आदम कद है और दृश्य का सपु जन कुछ ऐसे प्रकार से हुआ है मानो आँख के सामने ही दृश्य घटित हो रहा हो। बीचो-बीच कृष्ण और राधिका नृत्य मे थिरक रहे हैं। उनमे नृत्य की भावना जैसे अग-अग मे पैठ गई है। दोनो ओर सखियाँ मधुर स्वर मे गा-बजा रही हैं। इन सब भावनाओ को बहुत ही ऊँचे धरातल से, मार्मिकता से उतार लाने मे इसका सर्जक कलाकार धन्य है।

उधर पजाब की पहाडी रियासतो मे भी कला-आन्दोलन बडे धूम से चल रहा था। उसके दो मुख्य भेद हैं एक मे तो वहाँ की स्थानीय शैली, जो आल-कारिकता पर आधृत है, की प्रमुखता है। दूसरी राज्याश्रय में फलने-फूलने वाली कांगडा-शैली है, जिस पर मुगल प्रभाव का भी सूफियाना पानी चढा हुआ है। दोनो के ही अपने-अपने माध्यम है और दोनो का ही अपना-अपना स्वाद है। इसी मे पहले वर्ग की चित्र शैली के अन्तर्गत, कुल्लू शैली मे रचित रास-लीला के चित्र उपस्थित होते है। ये मुख्यत 'भारत कला भवन' के सग्रह मे है। इनमे गोपियो और कृष्ण के सपु जन में अनोखी से अनोखी आकृतियाँ बनाई गई हैं। उदाहरणार्थ, एक चित्र मे रास का दृश्य कमल के एक अधखिले फूल की भाँति चित्रित किया गया है। अन्यत्र, यही दृश्य कमल के एक अष्टकोण का रूप धरता है। कही एक सीधी रेखा मे ही सारी आकृतियाँ उपस्थित की गई है। ऐसे चित्रणो मे एक विशेष प्रकार की चारुता उत्पन्न होती है, क्योकि उनमे एक प्रकार की विविधता और विलक्षणता है, जिसमे प्रत्येक बार नई, कोरी कल्पना की प्रचुरता मिलती है। किस-किस विल-क्षण प्रकार से रास का दृश्य कलाकार के सम्मुख साकार हुआ होगा, यह देखने की वस्तु होती है। साथ ही, चित्रकार ने गोपियो के घाँघरो मे अनेक प्रकार के रगो की एक बेल जैसी बना दी है, मानो किसी उद्यान मे भिन्न-भिन्न रगो की क्यारियाँ चली गई हो।

पहाडी-शैली की मुख्य शाखा भी रास के चित्रो मे किसी से पीछे न रही। भागवत् की एक लोक-प्रसिद्ध चित्रमाला के अन्तर्गत रास के चित्रो को बनाने मे चित्रकार ने बडी लगन और रस का परिचय दिया है। कलकत्ते के प्रसिद्ध चित्र-सग्राहक सेठ गोपी कृष्ण जी कानोडिया के सग्रह मे रास का ऐसा ही एक चित्र है। इसमे रसविह्वला गोपियो के बीच कृष्ण की सुन्दर भगिमा दर्शनीय है। इस चित्र मे सबसे महत्त्व की बात तो यह है कि चित्रकार ने वातावरण ऐसा उपस्थित किया

है मानो हम सभी पूर्णिमा की चाँदनी मे बैठे हो। इसी चित्र मे नही, रास-सम्बन्धी ऐसे कई चित्रो मे ज्योत्स्ना इसी प्रकार अवतरित हुई है, जो भारतीय चित्रो मे ही नही ससार के चित्रो मे भी गर्व का विषय हो सकती है।

रास-से ही कुछ अन्य महत्वपूर्ण चित्रण भी इसी चित्रमाला मे हुए है, उनका वर्णन भी अनुचित न होगा। रास की क्लाति का अपनयन करने के लिए कृष्ण और गोपियाँ यमुना मे स्नान के लिए गईं। इस दृश्य को अकित करता हुआ विश्व-प्रसिद्ध चित्र भारत कला भवन मे है। इसमे पानी के भीतर से झिलमिलाता हुआ उनका कोमल गात्र दर्शनीय है, मानो उनका तन माखन का बना हो। साथ ही भिन्न-भिन्न प्रकार की जल-क्रीडा मे निरत गोपियो की भाव-भगिमाएँ बनाने, उनकी कोमल कल्पना करने मे चित्रकार ने कमाल किया है।

रास के बाद कृष्ण अन्तर्ध्यान हो गए। राष्ट्रीय सग्रहालय, दिल्ली, मे इसी चित्र माला का एक अद्भुत रत्न है। इसमें यमुना के सुदीर्घ सैकत पर जो पूर्ण चन्द्र की किरणो के द्वारा कण-कण मे प्रकाशित है, एक कोमलागी कृष्ण की खोज मे हताश दौड़ रही है। उसकी विह्वलता दिखलाने के लिए उसके फैलाए हुए हाथ ही काफी हैं।

इसी सग्रह मे इसके बाद वाला दृश्य भी है, जिसमे वही गोपी हताश हो लौट आई है और सिसक-सिसक कर कृष्ण के अन्तर्ध्यान होने का समाचार अन्य गोपियो को दे रही है।

रास का विषय चित्रकार के मानस को न जाने किस काल मे तरगित करता रहा है। न जाने कितने काल तक उसकी गीतमयी लय हमारे मन को, कल्पना को, प्रतिध्वनित करती रहेगी। न जाने कब तक, उसी लय से अनुप्राणित कलाकार की तूलिका स्वत ही चलती रहेगी। फिर भी क्या उस शक्ति को साकार किया जा सकता है, जिससे अणु, परमाणु-परमाणु सचालित है। जिसकी लीला स्वरूप सूर्य-चन्द्र-नतारक परिक्रमा करते रहते है। रास का स्वरूप अग-जग मे व्याप्त है। गर्मी की दोपहरी मे, सूखी पत्तियो का रास कौन नही देखता। वर्षा मे बादल थिरकते आते हैं। जाडो में फलो पर भ्रमर का नृत्य नित्य-नित्य होता है। वृक्ष झूमते हैं, नदियाँ बल खाती हैं, समुद्र की लहरें अठखेलियाँ करती है। जहाँ भी कलाकार देखता है, उसे रास का का ही दृश्य दीखता है और इसी भावना से उसे जब वह साकार कर देता है, वही रास का सर्वोत्तम अकन हो जाता है, वही उसका जीवन सफल हो जाता है।

: ६ :

रासलीला का स्वरूप और महत्व

डा० विजयेन्द्र स्नातक, विश्वविद्यालय, दिल्ली

माधुय भक्ति-निष्ठ वैष्णव सम्प्रदायो मे श्री कृष्ण की अनेक लीलाओ का वर्णन भगवान् के सौन्दर्य, शक्ति और शील को व्यक्त करने के लिए स्वीकार किया गया है। इन लीलाओ का आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक दोनो प्रकार से अर्थ करके भक्तजन भगवान् के स्वरूप को हृदयगम करते हैं। इनमे रास-लीला का स्थान आध्यात्मिक महत्व की दृष्टि से मूर्धन्य पर समझा जाता है। रास-लीला भावना के साथ-साथ लौकिक धरातल पर अनुकरणात्मक होकर दृश्य-लीला का रूप धारण करती है, अत उसके प्रभाव की परिधि अन्य लीलाओ की अपेक्षा व्यापक हो जाती है।

भागवत पुराण के दशम स्कध के (उनतीस से तैंतीसवें तक) पाँच अध्यायो को 'रास-पचाध्यायी' कहते है। इन पाँच अध्यायो को भागवत का प्राण कहा जाता है। 'रास-पचाध्यायी' मे रास का प्रारम्भ करने के लिए श्री कृष्ण की अन्त प्रेरणा का तथा शारदीय पूर्णिमा की विभावरी का बहुत ही सरल एव काव्यमयी भाषा मे वर्णन किया गया है। ज्यो ही श्री कृष्ण के मन मे रास प्रारम्भ करने का विचार आया समस्त वन-प्रान्त अनुराग की लालिमा से अनुरजित हो उठा। श्री कृष्ण ने अपनी प्रिय वशी उठाई और उसका नादन प्रारम्भ किया। वशी-रव को सुनते ही गोपियाँ अपने तन-मन की सुध भूल, समस्त कार्य-कलाप को बीच मे ही छोड, भाग खडी हुई और श्री कृष्ण के समीप पहुँच गई। श्री कृष्ण ने बडे सहज भाव से उन्हें पतिव्रत धर्म का उपदेश देकर वापस लौट जाने को कहा किन्तु गोपियो ने किसी मर्यादा को स्वीकार नही किया और अपनी टेक पर दृढ बनी रही। तब कृष्ण ने आनन्द पुलक परिपूर्ण हो उनके साथ मण्डलाकार स्थित होकर रास रचाया। इस राम मे कृष्ण और गोपियो का मिलन, सयोग शृगार के धरातल पर विभाव, अनुभाव, सचारी भाव आदि के साथ वर्णित किया गया है जिसे पढकर साधारण पाठक को भ्रम होना सहज है कि यह लीला काम-प्रेम की शृगारमयी लीला है, इसका कोई आध्यात्मिक धरातल नही है। किन्तु रास-लीला के मर्म को समझने के लिए उसके तात्विक आशय की अवहेलना नही की जा सकती। वैष्णव भक्तो ने इस रास-लीला को ज्ञानमार्ग, योगमार्ग कर्ममार्ग और भक्तिमार्ग की सरणि माना है—शृगार या काम चेष्टा का आधार, उसमे गृहीत ही नही हुआ। यहाँ रास-लीला मे उपास्य काम विजित है, इसीलिए इसके द्वारा काम-विजय रूप फल-प्राप्ति मानी जाती है।

रास-लीला के मूल उद्देश्य को विभिन्न सम्प्रदायो के आचार्यों ने अपनी-अपनी रास-निष्ठा और भक्ति के अनुसार नाना रूपो मे वर्णित किया है, किन्तु भागवत वर्णित 'रास-पचाध्यायी' को शृगारपरक लौकिक काम-वासना का प्रेरक किसी ने नही माना। श्री वल्लभाचार्य ने सुबोधिनी टीका मे रास-प्रकरण के प्रारम्भ मे कहा है—

"ब्रह्मानन्दात्समुद्धृत्य भजनानन्दयोजने।
लीलाया युज्यते सम्यक् सातुर्ये विनरूप्यते ॥"

"भगवान् ने व्रज मे लीलाएँ इसलिए की कि मुक्त जीवो का, ब्रह्मानन्द से उद्धार होकर उन्हें भजनानन्द मिले। इस प्रकार लौकिक विषयानन्द तथा काव्य-रस से इतर रसरूप श्री कृष्ण (रसो वै स) के ससर्ग की लीलाओ मे जो रस समूह मिले वह रास है। और यह रस समूह गोपी-कृष्ण की शरद् रात्रि की लीला मे अपने पूर्ण रूप मे स्थित बताया गया है। रास-क्रीडा द्वारा मानसिक अनुभव से रस की अभिव्यक्ति होती है, देह द्वारा प्राप्त अनुभव से नही—"रास-क्रीडायां मनसो रसोद्गम नतु देहस्य।"

वल्लभ सम्प्रदाय मे रास के तीन रूप माने जाते हैं। (१) नित्य रास, (२) अवतरित रास या नैमित्तिक रास, (३) अनुकरणात्मक रास यह दो प्रकार का होता है, (क) भावनात्मक या मानसिक और (ख) देहात्मक। गोलोक मे अथवा निजधाम वृन्दावन मे भगवान् श्री कृष्ण अपने आनन्द-विग्रह से अपनी आनन्द-प्रसारिणी शक्तियोके साथ नित्य रस मग्न रहते हैं। उनकी यह क्रीडा अनादि और अनन्त है। यही भगवान् का 'नित्य रास' है।"[1]

रास-लीला मे शृगारमयी चेष्टाओ और काम-क्रीडाओ का अत्यधिक वर्णन देखकर इसे अश्लील समझने की भूल होना स्वाभाविक है। इस शका का निरास करते हुए वल्लभाचार्य ने सुबोधिनी की कारिकाओ मे स्पष्ट रूप से यह भाव व्यक्त किया है कि कृष्ण के रास में काम की समस्त चेष्टाएँ तो हैं परन्तु उनमे काम नही है। गोपियो के लौकिक काम का शमन और अलौकिक काम की पूर्ति निष्काम भगवान् द्वारा हुई थी। यदि लौकिक काम से काम की पूर्ति होती तो उससे ससार उत्पन्न होता, परन्तु यहाँ तो गोपी-कृष्ण दोनो मे लौकिक काम का अभाव है और वे ससार से निवृत है। इस रास कार्य मे किसी मर्यादा का भग भी नही हुआ। इससे तो गोपियो को स्वरूपानन्द की मुक्ति ही मिली है। इसलिए इस लीला के सुनने से लोक निष्काम ही बनता है। (अपने काम की आहुति भगवान् मे कर देता है) भगवान् का चरित्र सर्वथा निष्काम है, इससे काम का उद्बोध ही नही होता।

"क्रिया सर्वापि संवात्र परं कामो न विद्यते।
तासा कामस्य सम्पूर्त्ति निष्कामेति तास्तया ॥
कामेन पूरित काम निष्काम संसारं जनयेत्स्फुटम्।
कामभावेन पूर्णस्तु निष्काम स्यात् न सशय ॥"

---

१. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—डाक्टर दीनदयालु गुप्त, पृष्ठ ४६७ से उद्धृत।

"अतोन कापि मर्यादा भग्ना मोक्षफलापिच ।
अतएतच्छ्रतेर्लोको निष्काम सर्वदाभवेत् ॥
भगवच्चरित सर्व यतोनिष्काम मीर्यते ।
अत कामस्य नोद्बोध ततः शुकवचः स्फुटम् ॥[1]"

भागवत् पुराण मे इसी भाव को व्यक्त करते हुए कहा है कि यह लीला काम-रोग रूपी हृदय रोग का नाश करने वाली है ।

"विक्रीडित व्रजवधूभिरिद च विष्णो,
श्रद्धान्वितो नुपुणुयादय वर्णयेच्च ।
भक्ति परा भगवति प्रतिलभ्य कामं,
हृद्रोगमाश्व पहिनोत्यचिरेण धीर ॥"

—भागवत पुराण, दशम स्कन्ध अ० ३३, श्लोक ४० ।

अर्थात् जो व्यक्ति श्रद्धान्वित होकर व्रज-बालाओ के साथ की गई भगवान् विष्णु की इस क्रीडा का श्रवण या कीर्त्तन करेगा, वह परम धीर भगवान् मे पराभक्ति प्राप्त करके शीघ्र ही मानसिक काम रोग से मुक्त हो जायगा। अत स्पष्ट है कि इस रासलीला को काम-लीला न मानकर काम-विजय लीला ही मानना चाहिए। राधावल्लभ सम्प्रदाय मे रास-लीला को इसीलिए 'कामजयी-लीला' कहते हैं।

श्री सनातन गोस्वामी ने भी रास-लीला को काम विहीन ही माना है और ह्लादिनी शक्ति का अनादि विलास कहा है ।

"ह्लादिनी शक्ति विलास लक्षण परम प्रेममयूयंवेषा रिरसा मतु काममयीति ।'

रास के लक्षण की स्थापना करते हुए कहा जाता है कि "सर्वशक्तिमान् परिपूर्ण परतत्व की पराख्या शक्ति के साथ अनादि सिद्ध रिरसा की जो उत्कठा है और उस उत्कठा के साथ जो चिद्विलास है उसी को 'रास' कहते है। इस लीला मे अपूर्व नृत्य, गीत, वाद्य आदि का आयोजन तथा विविध भावो का योग रहता है।"[2]

इस रास-लीला को दो रहस्यो मे विभाजित किया जाता है—अन्तरग और वहिरग। अन्तरग रहस्य का अभिप्राय आनन्द-रस का आस्वादन करना है और वहिरग का अभिप्राय काम को पराजित करना है। इसलिए जब तक काम को पूर्ण रूप से विजय न कर ले तब तक रास-लीला देखने का अधिकारी नही होता।

रास-पचाध्यायी को निवृत्तिपरक बताते हुए श्रीधर स्वामी ने लिखा है—

'शृ गार रसकथाप देशेन विशेषतोनिवृत्तिपरेय' पचाध्यायी ।'

रास-लीला का प्रतीकार्थ रास-लीला के विभिन्न प्रतीकार्थ प्रस्तुत किए जाते है, किन्तु राधावल्लभ सम्प्रदाय मे प्रतीकार्थों की उपादेयता नही है। यहाँ राधा और कृष्ण की अन्तरग लीला के ही एक रूप को रास के रूप मे ग्रहण किया जाता

---

१ भागवत की सुबोधिनी टीका, रास प्रकरण की कारिका ।

२ कल्याण—श्री रास-लीला रहस्य, ले० आचार्य मदनमोनम गोस्वामी, अगस्त १९३१—वर्ष ६। पृष्ट १९१ ।

है। किन्तु जो प्रतीकार्थ प्रचलित है उनका सक्षेप मे हम यहाँ उल्लेख करना आवश्यक समझते है।

ब्रह्म विद्या · इसे आधार मानकर चलने वाले ज्ञानमार्गी रास-लीला मे भी 'तत्वमसि' का विधान पाते है। उनकी दृष्टि मे भगवान् श्री कृष्ण 'तत्' पदार्थ हैं और गोपागनाएँ 'त्व' पदार्थ हैं। इन दोनो का परस्पर सश्लेषण हो तो क्या वह काम लीला होगी ? यथार्थ मे अन्तरग दृष्टि से यह जीव और ब्रह्म का अद्भुत सयोग ही है।[1]

योग शास्त्र . योग के आधार पर रास का प्रतीकार्थ इस प्रकार समझा जा सकता है कि अनाहत नाद ही भगवान् की वशी-ध्वनि है, अनेक नाड़ियाँ ही गोपियाँ हैं, कुन्न कुण्डलिनी ही श्री राधा हैं और मस्तिष्क का सहस्र-दल कमल ही वह सुरम्य वृन्दावन है जहाँ आत्मा और परमात्मा का सुखमय सम्मिलन होता है तथा जहाँ पहुँच कर ईश्वरीय विभूति के साथ जीवात्मा की सम्पूर्ण शक्तियाँ सुरम्य राम रचती हुई नृत्य किया करती हैं।[2]

आत्मशक्ति आत्मा की विभिन्न क्रीडाओ को ही लीला का आध्यात्मिक अर्थ मानने वाले विद्वान् कृष्ण, गोप, गोपी, वशी आदि सभी अवयवो का तात्विक अर्थ लगाते हैं—

'गो' का अर्थ है इन्द्रिय। अत 'गोप' या 'गोपी' का अर्थ हुआ इन्द्रियो की रक्षा करने वाला। कृष्ण आत्मा के प्रतीक है जो वशी ध्वनि से, सगीत आदि स्वरो से, गोपियो को अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। जैसे इन्द्रियाँ या वृत्तियाँ एक मन, एक प्राण होकर अन्तरात्मा मे मग्न हो जाने की तैयारी करती हैं वैसे ही गोपियाँ वशी-ध्वनि से कृष्ण की ओर केवल गति करती हैं। इसके पश्चात् रास-लीला का नृत्य आता है जो अपनी तरगो द्वारा गोपियो को कृष्ण सामीप्य प्राप्त करा देता है। सामीप्य का अनुभव अपनी शक्ति और अहमन्यता का स्फुरण करता है। अत पूर्ण मग्नता की दशा नहीं आ पाती। आत्म-प्रकाश पर अहकार का आवरण छा जाता है। पर जैसे ही कृष्ण रूपी आत्म-ज्योति अन्तर्हित होती है आत्म-मग्न होने की प्रेरणा तीव्र हो उठती है और अहकार विलीन हो जाता है। वियोग की अनुभूति लक्ष्य प्राप्ति के लिए इसीलिए आवश्यक मानी गई है। अहकार के नष्ट होते ही, पार्थक्य के समस्त बन्धन छिन्न-भिन्न हो जाते है, मनोवृत्तियाँ आत्मा मे लीन हो जाती हैं, गोपियाँ कृष्ण के साथ महारास रचने लगती हैं। यही है आत्मा का पूर्णानन्द मे लीन होना। भारतीय सस्कृति का यही चरम लक्ष्य है।[3]

रास-लीला का एक आध्यात्मिक अर्थ यह भी किया जाता है कि भगवान् की यह लीला अपने साथ अपनी ही लीला है। भागवत पुराण मे कहा है कि जैसे

---

१ श्री भागवत्तत्व—श्री करपात्री जी, पृष्ठ २१८।

२ कल्याण—रास-लीला में आत्मिक तत्व—ले० श्री बलदेव प्रसाद मिश्र, वर्ष ६, अगस्त १९३१, पृष्ठ १९४।

३ भारतीय साधना और सूर साहित्य · डा० मुशीराम शर्मा, पृष्ठ ७०८।

वालक अपने प्रतिविम्ब को दर्पणमणि आदि मे देखकर क्रीड़ा करता है वैसे भगवान् रमापति ने हास्य-आलिंगनादि द्वारा व्रज-सुन्दरियो के साथ खेल किया। भगवान् ने आत्माराम होकर भी अपने अनेक रूप करके प्रत्येक गोपी के साथ पृथक्-पृथक् रह कर क्रीडा की। इसलिए कुछ लोग इस लीला के अभिनय या अनुकरण के पक्ष मे नही है।[१]

वेद और रास-लीला—रासलीला का आध्यात्मिक प्रतीकार्थ मानने वाले कुछ विद्वानो ने वेद मे भी रास-लीला की खोज की है और शब्दार्थ के नित्य सम्बन्ध के रूप मे इसे ठहराया है। रास-लीला का रूप की दृष्टि से विचार प्राचीन काल से ही होता आया है। सब वेद भगवान् का ही प्रतिपादन करते है—इस सिद्धान्त को दरशाने के लिए ही रास-लीला का प्रसग है। गोपियाँ वेद की ऋचाएँ है और जिस प्रकार शब्द और अर्थ का नित्य सम्बन्ध है उसी प्रकार ऋचा रूपी गोपियाँ और भगवान् का सम्बन्ध भी नित्य है। इसी का नाम 'नित्य-रास-लीला' है।

भगवान् परमात्मा है और गोपियाँ प्रकृति है, अन्त करण की वृत्तियाँ है—यह मान करके भी रास-लीला का रहस्य रूप की दृष्टि से समझा जा सकता है। रास-लीला ब्रह्मानुरूप का रहस्य प्रकट करती है परमात्मा के साथ अनेको सम्बन्ध बाँधकर जीवात्मा भगवतस्वरूप प्राप्त करता है। यह सम्बन्ध काम, क्रोध, भय, स्नेह, एकता और भक्ति से सिद्ध होता है। अतएव रासलीला इस जीवात्मा का परमात्मा के साथ घनिष्ट सम्बन्ध प्रकट करती है।

ऋग्वेद में विष्णु देवता के जो विशेषण है वही आगे भक्ति सम्प्रदायो मे कृष्ण के लिए प्रयुक्त दिये गये है। कृष्ण वैदिक विष्णु एव सूर्य के विकसित रूप है। सूर्य अखिल चराचर विश्व की आत्मा है अतएव वे विश्व के आधार और मध्यबिन्दु बने हुए है तथा विश्व के चारो ओर फिरते हैं। इसी बात को श्री कृष्ण की रास-लीला का स्वरूप दिया गया है। रास-लीला तो मनुष्य तथा विश्व का परमात्मा के साथ का सम्बन्ध प्रकट करती है।

कृष्ण सूर्य है और गोपीजन किरण है। सूर्य की किरणें सूर्य मे रहती है, सूर्य से वाहर निकलती है और फिर सूर्य मे प्रवेश कर जाती है। सूर्य गोलाकार है और सर्वदा गतिमान् है। यही सुन्दर रहस्य रास-लीला मे सिद्ध किया गया है।

इस प्रकार प्राचीन तथा अर्वाचीन तत्व-चिन्तको ने रास-लीला की उदात्त भावना का वर्णन किया है। रास-लीला की भावना काव्य-दृष्टि और तत्व-ज्ञान की दृष्टि से अत्यन्त भव्य और सुन्दर है। अतएव इसका स्थान साहित्य और तत्व-ज्ञान के इतिहास में चिरन्तन है।[२]

वैष्णव सम्प्रदायों मे रास-लीला—प्रतीकार्थ के आधार पर यदि रास-लीला का मर्मोद्घाटन किया जाय तो यह लीला प्राकृत ठहरेगी ही नही। इसलिए इसमे

---

१ कल्याण—राम-लीला, ले० रामदयाल मजूमदार, वर्ष ६, अगस्त १९२१, पृष्ठ १८४।

२ देखिए—पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ—रासपँचाध्यायी—भागवत ले० गोविन्दलाल-हरगोविन्द भट्ट, पृष्ठ ३६६-६७।

किसी प्रकार की मर्यादा के अतिक्रमण का या काम-वासना का प्रश्न भी नही उठेगा।

रास-लीला के सम्बन्ध मे व्रज के भक्ति-सम्प्रदायो मे यह मतवाद प्रवर्तित है कि व्रज के गोपो को अपना स्वरूप-साक्षात्कार कराने के उद्देश्य से कृष्ण ने यह रास रचा था। भगवत् स्वरूप दर्शन के लिए जो विभिन्न दशाएँ वर्णित की जाती हैं रास-लीला उनमे छठी दशा है। पाँचवी तक पहुँचने पर साधक अपनी 'देहसुधि' भूल जाता है, 'पाचे भूले देह सुधि' तव कही 'छठी भावना रास की' प्राप्त होती है।

रास लीला के प्रयोजन और उद्देश्य के सम्बन्ध मे और भी विचार उपलब्ध होते है। राधावल्लभ सम्प्रदाय के मतानुसार यह लीला श्री लालजी ने (श्री कृष्ण ने) प्रेमतत्व (हित) के विकास के लिए की थी। इस लीला मे एक ही 'श्रीतत्त्व' श्री कृष्ण और गोपीरूप मे आविर्भूत हुआ है। यह शुद्ध, अनाविल, निरतिशय आनन्दपूर्ण प्रेम-लीला थी इसलिए प्रेम के लौकिक रूप को सम्मुख रखकर शृगारमयी भावनाओ का प्रस्फुटन इस लीला का आवश्यक तत्त्व बना। केवल यही ध्यान रखना चाहिए कि निर्विशेष प्रेम-रस का आलम्बन जब लौकिक नायक-नायिका न होकर भगवान् होते हैं तव वह परम पवित्र माना जाता है। लौकिक दृष्टि से वर्णित होने के कारण इसमें नायक-नायिका का आरोप कर लिया जाता है और उसके बाद स्वकीया-परकीयात्व का भी आधान स्वय हो जाता है। वस्तुत. ये गोपियाँ, जिनका रास-लीला मे वर्णन है, स्वकीया-परकीया भाव निर्विशेप ही थी, किन्तु सासारिक दृष्टि से उन्हे स्वकीया-परकीया भेद द्वारा वर्णित किया जाता है। भगवान् श्री कृष्ण को ही परमाराध्य एव पति मानने के कारण यथार्थ मे सभी नायिकाएँ (गोपियाँ) स्वकीया ही थीं किन्तु यदि उनमे से कुछ को अन्य पुरुषो के साथ विवाहिता माना जाय तो परकीयात्व भी माना जा सकता है। रास-पचाध्यायी की गोपियाँ सर्वत्याग पूर्वक श्री कृष्ण मे रत हुई थी अतः उन्हें स्वकीया ही कहा जाना चाहिए। श्री हित हरिवश जी ने राधा को दुलहन और कृष्ण को दूलहा बनाकर स्वकीयात्व का ही भाव व्यक्त किया है।

"खेलत रास दुलहिनी दूलहु।
सुनहु न सखी सहित ललितादिक, निरखि-निरखि नैननि किन फूलहु॥
अति बल मधुर महा मोहन धुनि, उपजत हँससुता के कूलहु।
थेई थेई वचन मिथुन मुख निसरत, सुनि सुनि देह दसा किय भूलहु॥
× × ×
अति लावन्य रूप अभिनय गुन, नाहिन कोटि काम सम तूलहु।
भ्रकुटि विलास हास रस, वरषत, 'हित हरिवश' प्रेम रस झूलहु॥"

—हित चौरासी पद म० ६२

लीला का दूसरा प्रयोजन जीवो का कल्याण है। सासारिक जीव शृगार और प्रेम के पथ पर चलता हुआ केवल 'काम' मे ही अपने भोग-विलास की इतिश्री समझ बैठता है जिसके परिणामस्वरूप ससार के आवागमन के बन्धन मे पुन.-पुन. फँसना होता है। इस लीला द्वारा वह काम-विजय की भावना पोषित करके काम-जय रूप फल को प्राप्त करता है। श्री कृष्ण और गोपीगण के उत्कृष्ट प्रेम को अपने लिए उपास्य मानकर चलने से काम-जय-रूप फल-प्राप्ति सम्भव है।

प्रेम लक्षरणा भक्ति मत मे रास-लीला का तृतीय प्रयोजन यह है कि श्री कृष्णों सदा राधिका जी को प्रसन्न करने के लिए प्रयत्नशील रहते है। राधा को प्रमुदित रखना ही उनका परमोद्देश्य है। राधिका की अशभूता अन्यान्य गोपिकाग्रो को रास मे एकत्र कर प्रकारान्तर से इष्टदेवी राधा को प्रमुदित करने का यह एक क्रीड़ा-कौतुक है। इस लीला मे 'तत्सुख सुखित्व' भाव की रक्षा करते हुए श्री कृष्ण अपने आमोद का विस्तार करते है। इस 'तत्सुख सुखित्व' का पर्यवसन भी लोक-कल्याण मे ही होता है। अत इस लीला की भावना करना ही पर्याप्त नही, अपितु इसे भौतिक रूप मे अनुकरण करना भी अभीष्ट है। अनुकरण द्वारा राधा के प्रति कृष्णानुराग का स्वरूप सासारिक जीवो को भी व्यक्त होता है।

रास-लीला स्थली के विषय मे स्पष्ट सिद्धान्त है कि वह वृन्दावन ही है, अन्य गोलोक आदि नही। हाँ, भावनागत रास-लीला के लिए किसी भी अन्य स्थल की कल्पना की जा सकती है। स्थूल वृन्दावन का माहात्म्य स्वीकार करने वाले इस सम्प्रदाय मे राधा-कृष्ण की समस्त लीलाएँ यही घटित हुई हैं और आज भी रास-लीला इसी धाम मे नित्य होती है। व्रज-लीला की पराकाष्ठा ही रास-लीला मे है। रास-पचाध्यायी मे गोलोक मे ही रास-लीला का होना वर्णित है, किन्तु भक्ति-सम्प्रदायो मे वृन्दावन को ही मुख्यता प्रदान की जाती है क्योंकि इस भूमि का महात्म्य गोलोक, ब्रह्मलोक आदि से भी बढकर माना जाता है। हित हरिवश जी ने अपने रास के पदो मे व्रज को भी रास-स्थल कहा है।

रास-लीला रहस्य का उद्घाटन करते हुए स्कन्द पुराण मे शाडिल्य ऋषि का राजा परीक्षित और राजा व्रजनाभ से जो सवाद आता है वह मनोयोगपूर्वक पठनीय है। व्रजभूमि की व्यापकता पर प्रकाश डालते हुए शाडिल्य ऋषि ने व्रज को ब्रह्म का ही रूप ठहराया है। उस व्यापक व्रज मे कृष्ण को देहधारी बताया है और उन्हे आत्माराम कहा है। श्री कृष्ण परमात्मा है और उनकी आत्मा हैं श्री राधा। श्री राधा को प्रसन्न करने के लिए कृष्ण रास-लीला रचते हैं। इस लीला मे सत्व-रज-तम गुणो के द्वारा सृष्टि, स्थिति और प्रलय होता है। यह लीला दो प्रकार की है वास्तवी और व्यावहारिकी।

सर्ग स्थित्यप्ययां यत्र रज सत्वतमोगुणं ।
लीलैव द्विविधा तस्य वास्तवी व्यावहारिकी ॥
वास्तवी तत्स्वसवेद्या जीवाना व्यावहारिकी ।
आद्या विना द्वितीया न द्वितीया नाद्यगाक्वचित् ॥

वास्तवी लीला सब जीवो के हृदय मे होती है, परन्तु व्यावहारिकी लीला देखे विना वास्तवी लीला किसी की समझ मे नही आती। साथ ही वास्तवी लीला के समझे विना व्यावहारिकी लीला का रस भी पवित्र भाव से आस्वादन नही किया जा सकता। इन दोनो लीलाओ का पारस्परिक गहन सम्बन्ध है।[१]

रास-लीला के स्वरूप निर्णय के बाद यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उत्पन्न

---

[१] कल्याण—रास-लीला, लेखक-रामदयाल मजूमदार, वर्ष ६, अगस्त १९३१, पृष्ठ १७७।

होता है कि यदि यह लीला प्रतीक-रूपक और शुद्ध भावनापरक आध्यात्मिक है तो इसका अभिनय-अनुकरण करना युक्तिसगत नही। भगवान् की गूढ लीला का ससारी जीव किस प्रकार अनुकरण कर सकते है। किन्तु इस प्रश्न के उत्तर मे यह कहा जाता है कि यदि केवल स्मरणात्मक शैली से इस लीला की मानसिक भावना मात्र की जायगी तो केवल उन्ही भक्तो को इसका लाभ प्राप्त होगा जिनका कल्मषहीन मानस भगवान् की भावना करने योग्य पवित्र हो गया है। साधारण कोटि के ससारी भक्त इस लीला की मानस-भावना नही कर पायेंगे और यह गूढ-गहन दार्शनिक अनुभूति मात्र रह जायगी। राधावल्लभ सम्प्रदाय मे दार्शनिक गूढता को बचाकर प्रेम की स्निग्ध भूमि पर राधा कृष्ण के नित्य विहार की स्थापना की गई है, अत सामान्य कोटि के भजन भी अनुकरणात्मक लीला मे पावन प्रेम-रस का आस्वादन कर तृप्त हो सकते है। अत इस लीला का अनुकरण विधेय माना गया है। वल्लभाचार्य तथा चैतन्य महाप्रभु के अनुयायियो ने भावनापरक रास-लीला का ही अधिकाश मे वर्णन किया है क्योकि अभिनयात्मक लीला मे त्रुटियो के समावेश का उन्हें भय था। रास-पचाध्यायी के प्रसंगो को लेकर नन्ददास आदि भक्तो ने बडे ही मनोमुग्धकारी लीला-चित्र अकित किये किन्तु स्थूल अनुकरण पर बल नही दिया। श्री गोस्वामी हित हरिवश जी ने भी अपनी "हित-चौरासी" मे भावनापरक लीला का ही वर्णन किया है किन्तु उनके समय मे लीला का अनुकरण प्रारम्भ हो चुका था इसके अनेक प्रमाण उपलब्ध होते है।

रास-लीलानुकरण के सम्बन्ध मे हम विदेशी अग्रेज विद्वानो का अभिमत, श्री नारविन हईन हेवन लिखित लेख के आधार पर यहाँ उद्धृत करना आवश्यक समझते है। आज से डेढ सौ वर्ष पूर्व जेम्स टाड लिखित 'दि टानलस एण्ड एन्टिक्विटीस ऑफ राजस्थान' मे हमे तत्कालीन रास-लीला का आँखो देखा वर्णन उपलब्ध होता है। रासधारियो के नृत्य के विषय मे वे लिखते हैं—'वे प्राय किशोर होते है, ब्राह्मण होते हैं। मथुरा मे रास सम्बन्धी शिक्षा पाते है। जहाँ एक बड़ा भू-भाग उनकी आजीविका का साधन है। इस ऋतु मे वे देश के विभिन्न भागो मे, हिन्दू राजाओ के दरबारो मे रास करने के लिए निकल पडते हैं। गायको के अतिरिक्त चार अभिनेता भी है और सब सुन्दर वदन है।

रास-लीला का वर्णन करने वाले दूसरे अग्रेज सज्जन ग्रोटन है। उन्होने रास-लीला का बडी अलकारिक भाषा में सौन्दर्यपूर्वक वर्णन किया है। वे लिखते है— "रास बैलेट (समूह नृत्य) के समान हुआ। इसमे प्रेम की भावना और चाचल्य का प्रादुर्भाव था, किन्तु सब कुछ रोचक और दिव्य था। गोपियो के साथ—गोकुल की बालाओ के साथ भाषा में जो व्रज प्रान्त मे बोली जाती है गायन हुआ।' ग्रोटन महोदय ने रास-लीला के पदों की भाषा पर मुग्ध होकर उनका अग्रेजी मे अनुवाद भी किया था। व्रजभाषा के पद-लालित्य की उन्होने अपने विवरण मे भूरि-भूरि प्रशसा की है। एक विदेशी के लिए रास-लीला अपने नृत्य, गायन, सगीत और पदो के कारण मोहक सिद्ध हुई यह कम आश्चर्य की बात नही है।

तीसरे अंग्रेज सज्जन ग्राउस है जिन्होंने 'मथुरा मैमायर्स' नामक अपने ग्रन्थ

मे रास का विस्तार के साथ वर्णन किया है । वे लिखते है—'रास अलिखित धार्मिक रूपक है जिसमे कृष्ण के जीवन की प्रमुख घटनाएँ व्यक्त होती है । यह मध्य कालीन योरोप के 'मिरेकिल प्लेज' के समरूप है । जिस दृश्य को बडे सौभाग्य से मैं देख सका वह विवाह का दृश्य था जो सकेत में व्यक्त किया गया था । दृश्य अत्यन्त मनोहारी था और प्रेम की लीला मे भी किसी प्रकार के अविचार का आभास नही था ।'

इन तीनो अग्रेज विद्वानो के अभिमतो का पर्यालोचन करते हुए श्री नारविन हईन हेवन ने लिखा है कि—' भारतीय-नाट्य के अधकार युग से रास-लीला क्यो अप्रभावित-अक्षत रही ? इसके कई कारण हो सकते हैं, किन्तु दो कारणो का उल्लेख निस्सकोच किया जा सकता है । प्रथम तो यह कि रास-लीला अन्तत धार्मिक रूपक है । भारतवर्ष के सभी प्राचीन नाटक—यह सत्य है कि नाम से तो धार्मिक है किन्तु रास-लीला मे केवल रूढि के लिए ही धर्म की छाया नही रहती वह नितान्त भक्तिपूर्ण भावावेशो का समीकरण है । इसके दर्शक भी भक्त हृदय होते है जो अपने इष्टदेव का लीलामृत पान करने के इच्छुक होते है, ऐन्द्रिय आमोद-प्रमोद ग्रहण करने वाले नही । इस प्रकार रास-लीला सामूहिक उल्लास के कुप्रभाव से सदा सुरक्षित रही है ।"[1]

सेवक जी का एक रास-पद

वश रस नाद मोहित सकल सुन्दरि,
आनि रति मानि कुल छांडि कानी ।
बाहु परिरम्भ, नीवी उरज परसि हँसि,
उमगि रतिपति रमति रीति जानी ।
जूथ जुवतिनु खचित, रास-मडल रचित,
गान गुन नित्त आनन्द दानी ।
तत थेई-थेई करत, गति वनी तन धरत,
रास रस रचित हरिवस वानी ॥

---

१ देखिये—पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ—श्री नारविन हईन हेवन लिखित 'रास-लीला के विदेशी दर्शक, लेख-पृष्ठ ७१३-१७ ।

: ७ :

नित्य-रास

स्वामी गोकुल चद, रासधारी,

व्रजभाषा कार्यक्रम, आकाशवाणी, दिल्ली

रास के प्राचीन सगीत का परिचय पहले दिया जा चुका है। यहाँ हम वर्त्तमान रास के सगीत-पक्ष का वर्णन करना चाहते हैं, जो नित्य-रास मे प्रमुख रूप से देखा जा सकता है। श्री कृष्ण की व्रज-लीलाओ के अभिनय से पूर्व, राधा कृष्ण की झाँकी खुलते ही 'नित्य-रास' का क्रम आरम्भ हो जाता है। 'नित्य-रास' मे नृत्य और सगीत प्रधान है, जब कि लीलाओ मे कथानक और कथोपकथन प्रधान हो जाते हैं।

सर्व प्रथम सिंहासन पर श्री कृष्ण राधा तथा सखियो के स्वरूप जब विराजते हैं तो बीच मे श्री कृष्ण, उनके बाँई ओर श्री राधा जी तथा दोनो ओर सखियो की झाँकी होती है। उनके सामने कम से कम १५-२० फुट लम्बा तथा कम से कम १०-१२ फुट चौडा स्थान खाली रखा जाता है, जिसमे वे नृत्यादि कर सकें। दूसरी ओर उनके सामने एक कोने पर मण्डली के स्वामी और उनकी बगल मे क्रमश रास-लीला का वाद्य-वृन्द रहता है। रास के वाद्यो मे प्राय पखावज, हारमोनियम, सारगी तथा किन्नरी, झाँझ आदि होते हैं। वाद्य-वृन्द के पीछे दर्शको के लिए स्थान होता है।

रास के आरम्भ मे पहले स्वामी जी उठकर श्री कृष्ण, राधिका के चरण छूते हैं, फिर अपने स्थान पर आकर सारगी के स्वरो मे मगलाचरण बोलते हैं। एक उदाहरण देखिए—

(श्लोक)

सज्जलजलदनील दर्शितोवारशील, करतलधृतशैल वेणुवाद्ये रसालम्।
व्रजजनकुलपाल कामिनीकेलिलोल, तरुणतुलसिमाल नौमि गोपालबाल।
गुरु रब्रह्मा गुरुरविष्णु गुरुरदेव महेश्वर। गुरु साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नम ॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानान्जनशलाकया। चक्षुरुन्मीलतयेन तस्मै श्री गुरुवे नम ॥

(दोहा)

सब द्वारन कूँ छाडिकें, गह्यो तुम्हारो द्वार।
हे वृषभानु की लाडिली, मेरो ओर निहार॥

मगलाचरण के आरम्भ मे "श्री ब्रजराज कुमार वर गाइये। ब्रज की जीवन-धन गाइये" आदि का सपुट बोला जाता है। स्वामी जी के उपरान्त शेष वाद्य-वादक भी वारी-बारी से वन्दना करते हैं, यथा—

"बल्लभ आवत मैं सुने, कछु नियरे कछु दूर।
इन पलकन मग झारिहों, ब्रज-गलियन की धूर॥
वृन्दाबन बानिक बन्यो, भ्रमर करत गुञ्जार।
दुलहिन प्यारी राधिका, दूलह नन्द-कुमार॥"

दोहो के साथ-साथ समाजी लोग पद भी गाते है। इसके बाद दोहो के अन्त मे मण्डली के स्वामी वाद्य-वृ द के साथ सामूहिक रूप से ध्रुपद गाते हैं, जैसे—

"वृन्दावन सघन कुज, माधुरी लतान तरे, यमुना पुलिन मे मधुर बाजी बाँसुरी।
जबते धुनि सुनी कान, मानों लागे नैंन बान, प्रानन की कहा चलैं पीर होत साँसु री।
ब्यापौ जो अनग तामे अग सुधि भूल गई, कोई कछु कहो चाहें करौ उपहास री।
ऐसे ब्रजधीसजू सों प्रीति नई रति बाढ़ी, जाके उर बस गई प्रेम-पु ज गाँसु री।
'नन्ददास' सोई गुपाल, प्यारौ गिरधरन लाल, जसुधा को लाल प्यारौ,
राधिका उर-हार री।"

ध्रुपद का अतिम चरण समाप्त होने से पूर्व ही सखी खडी हो जाती है और थाली मे गेहूँ के चूर्ण का चौमुखा दीपक जलाकर एक सखी युगल-सरकार की आरती करती है। बाद मे सखियो द्वारा आरती गाई जाती है, जैसे—

"जय कृष्ण मनोहर योगतरे, यदुनन्दन नन्दकिशोर हरे।
जय रासरसेश्वर पूर्णतमे, वर दे वृषभानकिशोरि हरे॥
जयतीय कदम्ब तरे ललिता, कल-वेणु सुधा-रस गान-लता।
सह राधिकया हरि एकमता, सत तन तरुणी जन मध्यगता॥"

आरती के पश्चात् सखियाँ युगल सरकार के चरण-स्पर्श करती है, और तब एक सखी प्रिया-प्रियतम से यह कहकर रास-मण्डल मे पधारने की प्रार्थना करती है, कि—

"हे प्रिया प्रीतमजी, आपके नित्य-रास को समय है गयौ है, सो आप कृपा करिके रास मण्डल में पधारौ।"

यह कहकर सखियाँ सिंहासन के नीचे अपने-अपने स्थानो पर बैठ जाती है। तब श्री ठाकुर जी (श्री कृष्ण जी) वही सिंहासन पर से अपने पार्श्व मे बैठी राधिका जी से रास में पधारने की प्रार्थना गायन द्वारा करते है, यथा—

"हे गोपीजनवल्लभे प्रियतमे, हे रासलीलोत्सुके,
हे वृन्दावनराजपट्टमहिषी, हे हे निकुजाधिपे।
हे सगीतकलाधिपूर्णकुशले, हे नित्यरासेश्वरी,
हे मत् प्राणप्रिये प्रसन्नमनसा, रासोत्सवे गम्यताम्॥"

गीत के पश्चात् फिर श्री ठाकुर जी श्रीजी (श्री राधा जी) के हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हुए यह वाक्य कहते हैं—

"हे श्री किशोरी जी, आपके नित्य-रास को समय है गयो है। आप कृपा करिकें रास-मण्डल मे पधारो।"

तब श्रीजी उनके हाथो को पकडकर उत्तर देती है—"अच्छो प्यारे।" फिर हाथो को छोड़कर इस प्रकार गायन करती है—

"प्यारे रास, विलास को, मोहि बडो उत्साह।
चलो चलें सब सखिन मिल, नव-निकुञ्ज के मांह॥"

अथवा

"अहो मेरे लाल भामते प्रीतम।
आनन्द-कन्द किसोर है मूरत, प्रेम-सुधा रस वर्षते प्रीतम॥ अहो०॥
दिव्य चिद्घन आनन्द मूरत, हे उदार मेरे लाडले प्रीतम॥ अहो०॥
चलो चलें अब मडल चलिये, रस ढरिये मेरे लाडिले प्रीतम॥ अहो०॥
अजी अजी तुम प्रीतम प्यारे, हाँ हाँ जी श्री नन्ददुलारे॥ अहो०॥"

गीत के समाप्त होने पर श्रीजी ठाकुर जी के गले मे बांह डाल देती हैं और श्री ठाकुर जी श्रीजी के गले मे गलवहियाँ डाले हुए उठकर नीचे रास करने को आ जाते है। साथ मे सखियाँ भी उठ खडी होती हैं। श्रीजी और ठाकुरजी आमने-सामने रहते है और बीच मे सखियाँ। तुरन्त ही स्वामी जी गायन आरम्भ कर देते हैं और उसी की ताल पर नृत्य प्रारम्भ हो जाता है। आरम्भ मे श्रीजी, ठाकुर जी तथा सखीगण कुछ नही गाते, केवल नृत्य करते रहते हैं। वे मण्डलाकार चलते हैं और हाथो को फैलाए हुए पग ताल देते जाते हैं। इस समय समाजी पद गाते है। एक पद इस प्रकार है—

"नाचत रास मे रास-विहारी, नचवत हैं व्रज की सब नारी।
तादीम तादीम तत तत थेई-थेई, थु गन थु गन देत गति न्यारी॥"

इस गीत को पहले विलवित लय मे गाते है फिर दुगन मे। दुगना ताल होते ही श्री ठाकुर जी, श्रीजी तथा सखीवृन्द एक दम पैरो की ताल को बढा कर चक्कर खाना आरम्भ कर देते हैं। चार या पाँच चक्कर खाकर सब नियमानुसार (श्रीजी के सामने ठाकुर जी, बीच-बीच मे सखियाँ) घुटनो के बल बैठ जाते है और वाद्यो की ताल के अनुसार हाथो को कई प्रकार से नचा-नचा कर भाव-प्रदर्शन करते हैं। सग मे मुख, कमर आदि अगो से भी भाव-नाट्य करते है, फिर सब एक पक्ति मे खडे हो जाते है। श्री ठाकुर जी के वाँई ओर श्रीजी तथा दोनो ओर सखियाँ रहती हैं। इसके पश्चात् निम्नलिखित तालो पर ठाकुर जी, श्रीजी तथा सखी अलग-अलग नाचते है। पहले ठाकुरजी, फिर श्रीजी और अन्त मे एक-एक या दो-दो सखियाँ। सबसे पहले पुराने गीत को ही, जिसकी ताल द्विगुण के स्थान पर अब चौगुनी कर देते हैं, स्वामी जी इस प्रकार गाते हैं—

"ततत्तता थेई ततत्तता थेई ततत्तता थेई।"

इसके बोलते ही श्री ठाकुरजी पग-ताल देते हुए पक्ति मे निकल पडते है और लगभग चार-पाँच डग आगे फिर कर श्रीजी की ओर मुँह करके खडे

होते हैं। वे वाद्य पर पग-ताल देते, कूदते और फुदकते हैं। हाथो से वे स्वामी जी द्वारा गाए जाने वाले निम्नलिखित गीत पर नृत्य करते है। श्री कृष्ण के नृत्य का परमूल निम्न है—

"तिकट तिकट धिलाग, धिकतक, तोदीम धिलाग, तकतो।
ता धिलग, धिग धिलग, धिकतक, तोदीम तोदीम, घेताम घेताम ॥
धिलाग धिलांग धिलग, तक गदगिन थेई।
ततता थेई, ततता थेई, ततता थेई ॥"

श्री कृष्ण के उपरान्त राधिका जी नृत्य करती हैं। उनका परमूल ये है—

"तातृ अग, थुन थुन तो, धिकतू अंग, थुन थुन तो।
ता थुन थुन, धिक थुन थुन, धिक तक, थु ंग थु ग तक ॥
थु ग थु ंग तक, थु ग थु ग थु ग तक गदगिन थेई।
ततता थेई, ततता थेई, ततता थेई ॥"

फिर श्रीजी अपने स्थान पर जाकर खडी हो जाती है और सखियाँ एक एक करके पग ताल देती हुई नृत्य करती है और उसी प्रकार ४-५ डग चलकर घूमकर श्रीजी तथा ठाकुरजी की ओर मुँह करके नीचे वाले गीत पर हाथो के भाव तथा कुदक-कुदक कर नृत्य करने लगती है। उनके नृत्य का परमूल ये है—

"तत्तुक दम, धिरकिट तक, तिरकिट, नग नग, तू तू आन तो।
तत्तुक दम, धिरकिट तक, तिरकिट, नग नग तू तू आन तो ॥"
ता त्रिग, ता ता त्रिग, तत्थुग थुग, तत्थुग थुग, थु ग थु ग थु ग तक, गदगिन थेई।
ततता थेई, ततता थेई, ततता थेई ॥"

सखियो के नृत्य के परमूल और भी है, जैसे—

"तैंजिक तैंजिक तैंजिक तैंजिक त्री त्रेकता जिजिक तत्तथेई।
तैंजिक तैंजिक तैंजिक त्री त्रेकता जिजक तत्तथेई ॥
जिजक तत्तथेई जिजिक तत्तथेई।
तैंजिक तैंजिक तैंजिक तैंजिक त्री तेजतिक धाता थेई।
ततता थेई ततता थेई ततता थेई ॥"

यदि सखियो की सख्या दो से अधिक हुई तो शेष सखियाँ भी क्रमश उपर्युक्त क्रम को दोहराती है। फिर ठाकुर जी पुन 'ततता थेई' के बोलते ही चल पडते हैं और पहली तरह नीचे के गीतों पर नाचते हे। दुवारा 'तद्दी' बोलने पर पीछे हटते हैं और 'आन आन आन' के बोलो पर तीन बार कुदक कर खडे होते हैं।

"तद्दी तद्दी तद्दी तद्दी, थिकतक तद्दी, आन तो।
तद्दी तद्दी तद्दी तद्दी, थिकतक तद्दी आन तो ॥
आन आन आन ॥ ततता थेई, ततता थेई ॥
जिजिक तत्त थेई, जिजिक तत्त थेई, जिजिक तत्त थेई, ता था।
जिजिक तत्त थेई, जिजिक तत्त थेई, जिजिक तत्त थेई, ता था ।

येई ता, येई ता, येई,
जिजिक तत्त येई ता, जिजिक तत्त येई ता,[1] जिजिक तत्त येई ता, ।
येई येई येई येई ता थे थे थे, ये ये ये ता, त्रिय ता त्रिय ता,
त्रि तेग ता, गद गिन येई ता ।

उक्त परमूल भगवान् कृष्ण के मुख्य नृत्य के हैं । इन परमूलों के बोले जाने पर अपनी पंक्ति के समीप पहुँचते हुए श्री ठाकुर जी पीठ की ओर फिर पगताल देते हुए उलटा चलकर अपने स्थान पर, (पंक्ति से ४-५ कदम हटकर) फिर आ जाते हैं और उक्त बोलों पर एक घुटने के बल बैठकर हाथों के भाव तीन बार दिखाते हैं। श्री कृष्ण के नृत्य के बाद सभी स्वरूप निम्न परमूलों पर सामूहिक नृत्य करते हैं—

"येई येई येई येई येई, तत्त येई येई।
येई येई येई येई येई येई येई ता ॥"

नीचे के परमूल की अन्तिम पंक्ति पर 'ता' बोलते ही सब सिंहासन पर जाकर विराज जाते हैं। यह हुआ 'नित्य-रास' का प्रथम भाग। इसके उपरान्त इसका दूसरा भाग आरम्भ होता है जिसमें नृत्य के साथ गायन भी होता है।

ठाकुर जी के विराज जाने पर स्वामी जी 'नाचत रास में रास विहारी' जैसा कोई पद बोलते हैं। उसको सुनते ही श्री ठाकुर जी चुपचाप नीचे उतर ४-५ पग आकर घूम कर श्रीजी की ओर मुँह करके हौले-हौले कदम रखते हुए चलते हैं। सिंहासन पर श्रीजी के सामने खड़े होकर उनका शृंगार ठीक करते हैं—मुकट, साड़ी, माला, कुण्डल इत्यादि सँभालने लगते हैं। फिर गीत समाप्त होने पर श्रीजी को हाथ जोड़ कर अपने स्थान पर बैठ जाते हैं।

इनके पश्चात् श्री ठाकुर जी श्रीजी, तथा सखीवृन्द को विश्राम देने के अर्थ स्वामी जी तथा रास के वाद्य-वादक बारी-बारी से भक्तिरस के दोहे, पद, सवैया, कवित्त आदि बोलते हैं।

थोड़े से विश्राम के पश्चात् जब सब गा चुकते हैं तब स्वामी जी 'ततततता थेई' बोलते हैं। इसे सुनते ही सभी स्वरूप सिंहासन से नीचे आ जाते हैं, और तब रास का सामूहिक गायन और उसके साथ नृत्य आरम्भ होता है। रास का वाद्य-वृंद स्वरूपों की संगति करता है और कभी-कभी समाजी लोग स्वरूपों के गीत के साथ-साथ स्वयं भी गाते हैं। इसी समय कभी-कभी डण्डों पर भी नृत्य व गायन होता है। कभी वेणी गूँथने का नृत्य होता है, कभी श्री कृष्ण और राधा ही नाचते हैं, कभी सखियाँ भी मिलकर नाचती हैं। इनके न्यारे-न्यारे गीत हैं। रास के इन नृत्य-गीतों के कुछ नमूने यहाँ दे रहे हैं।

निम्न पद पर (माँझ) केवल रास में ठाकुर ही गाते हुए श्रीजी के साथ नृत्य

---

१ इसी सन्दर्भ में ब्रज के पुराने रासधारी लाड़िलेदास स्वामी की ओर से एक लेख 'ब्रज-भारती' में छापा था, जिसमें यह परमूल निम्न प्रकार बताया गया है—
त्रिदिक तत्त थेई त्रिदिक तत्त थेई ।
त्रिदिक तत्त थेई ता त्रिदिक तत्त थेई ता त्रिदिक तत्त थेई ता ॥—संपादक

करते है। इसमे सखियाँ भाग नही लेती—

गीत—"आयजा री तूतो लाड लड़ैती तेरी माला सुरझाऊँ।
नकबेसर की गूँथ जो खुल गई ताऊए सुघड़ बनाऊँ ॥
एढ़ी-टेढ़ी चाल चलत है सूधी चलन सिखाऊँ।
'वृन्दावन हितरूप' रसिकवर तेरे ही गुण गाऊँ ॥
राधारानी हाँ हाँ हाँ हाँ जी, श्यामा प्यारी हो हो हो हो जी,
राधे प्यारी श्री राधे ॥"

अथवा

"तब मेरे नैन सिरात किसोरी, जब तेरौ रूप निहारों।
कोटि काम रवि कोटि चन्द, वदनारविंद पै वारों ॥
नासा सुफल होय जब मेरी, स्वाँस सुगध उर धारों।
यह बसी मेरी जगत प्रससी, श्री राधे राधे नाम उचारों ॥
जो मेरौ मोर-मुकट साँचो है, तेरी सेज, महल-रज झारों।
'व्यास-स्वामिनी' की छबि ऊपर, राई नोंन उतारो ॥"

इसी प्रकार राधा और कृष्ण के युगल नृत्य का एक पद इस प्रकार है। इस पद के गायन पर राधा-कृष्ण क्रम से नाचते हैं और सखियाँ गायन करती हैं—

(श्री ठाकुर जी के नृत्य के समय)

नाचै छबीलौ ब्रजराज छूम छन न न न न न न।
ता ता थेई, ता ता थेई, चरन चपल आली ॥ नाचै छबीलौ० ॥"

(श्री राधिका जी के नृत्य पर)

"नाचै छबीली राधिका, छूम छन न न नन न न।
ता ता थेई, ता ता थेई, चरन चपल आली ॥ नाचै छबीलौ० ॥"

आगे का यह भाग दोनो के ही नृत्य के आरम्भिक वोलो के साथ क्रमश दुहराया गया है—

"सजनी रजनी, सरस सरद ऋतु आज सुफल आली ॥ नाचै० ॥"

इसी प्रकार निम्न गीत सभी सामूहिक रूप से डडा वजा कर गाते व गोलाकार नृत्य करते हैं—

"ऐ घनश्याम सुन्दर स्याम हमारौ प्यारौ री।
प्रानन-प्यारो, छल-बल वारौ, नैनन की सेनन सो—
चितवा चुराय लियौ, जादू मोपै डारौ री ॥
मोर-मुकुट माथे पै सोहे। कुडल हलन चलन मन मोहै ॥
धा किट, घुम किट, तकिट तका। तक घुम किट, घुम किट तक धा ॥
लेत अलापन प्यारौ री ॥"

अन्त मे अब एक सामूहिक नृत्य का पद और देखें। ऐसे गीतो मे सभी—ठाकुर जी, श्रीजी तथा सखीवृन्द पक्ति मे खडे होकर गाते है। पक्ति मे ही पग-ताल देते हुए तथा हाथों से भाव दर्शाते हुए कुछ दूर ४-५ कदम आगे आते है और पग-ताल देते हुए ही पीछे हटकर फिर वही जाकर खडे हो जाते हैं।

गीत इस प्रकार है—

"हांजी रच्यौ रास-रंग, हांजी रच्यौ रास-रग, स्याम सवहीन सुख दीनों।
मुरली-धुनि कर प्रकास, खग-मृग सुन रस उदास,
युवितिन तज गेह-वास वनहि गवन कीनों॥
मोहे सुर, असुर, नाग, मुनि-जन मन गये जाग,
सिव, सारद नारदादि, थकित भये ग्यानी।
अमरागन, अमर-नारि, आई लोकन विसारि,
ओक लोक त्याग कहत धन्य-धन्य वानी॥
थकित भयौ गति समीर, चन्द्रमा भयौ अधीर,
तारागन लज्जित भये, मारग नहिं पावै।
उलटि जमुना वहत धार, सुन्दर तन सज सिंगार,
सूरज प्रभु संग नारि, कौतुक उपजावै॥ हां जी॥"

इस प्रकार रास का सभी सगीत व्रजभाषा के प्राचीन 'वाणी साहित्य' की मूल्यवान निधि है। नृत्य और गायन के इस क्रम के साथ 'लाडिलो लाल' की जयघोष होती है और नित्य-रास समाप्त होता है। 'नित्य-रास' के वाद फिर भगवान् की कोई व्रज-लीला समयानुसार की जाती है। सक्षेप मे यही 'नित्य-रास' की परपाटी है।

स्वामी हरिदास जी का एक रास-पद

[राग केदारौ]

सुनि धुनि मुरली वन वाजै, हरि रास रच्यौ।
कुंज-कुंज द्रुम वेलि प्रफुल्लित, मंडल कंचन मणिन खच्यौ॥
नृत्यत जुगल किसोर वलौ जन-मन मिलि राग केदारौ सच्यौ।
श्री 'हरिदास' के स्वामी स्यामा कुज-विहारी, नीकै आज गोपाल नच्यौ॥

: ८ :

रास-लीलाओं का रूप-विधान

श्री सुरेश अवस्थी, नई दिल्ली

हिन्दी-क्षेत्र के लोक-नाट्य-रूपो मे रास-लीला एक बहुत ही विकसित रूप है, और सभी दूसरे नाट्य-रूपो से अधिक लोक-नाटक के तत्वो, उसकी रूढियो और प्रदर्शन-युक्तियो का प्रतिनिधित्व करता है। इस नाट्य-रूप की कोई ४०० वर्षों की अखण्ड परम्परा है, और उसका साहित्य-अश, सगीत, नृत्य और अभिनय सभी कुछ ऐसा शैली-रूढ हो गया है कि समय-समय पर नये प्रभावो और नये तत्वो का समावेश होने पर भी उसकी रूपगत विशेषताओ की मौलिकता आज भी सुरक्षित है। यद्यपि पिछले २०-२५ वर्षों मे इस नाट्य-रूप का कई प्रकार से और कई कारणो से ह्रास हुआ है, और उसमे बहुत सी ऐसी क्षेपक सामग्री आ मिली है, जो साहित्य और नाटकीयता दोनो ही दृष्टियो से हीन-कोटि की है, और वह नाटक के पूरे सविधान को कमजोर कर रही है और उसकी कलात्मक प्रभावशीलता कम कर रही है। बहुत सी गद्य-सवाद सामग्री, नई-नई धुनो और छन्दो मे रचे गये गीत, आधुनिक नृत्य शैली के तत्व इन लीला-नाटको की परम्परागत कला-सामग्री मे मिल गए हैं। इनका शास्त्रीय-सगीत और विशेप प्रकार का रूढि-बद्ध नृत्य भी बहुत कुछ विकृत हुआ है, या उसका कलात्मक स्तर गिरा है। फिर भी, यह नाट्य-रूप, आज भी बहुत वडे दर्शक-समाज के लिए एक सशक्त और रसवादी रगमच है और पूरे व्रज-क्षेत्र मे २५-३० व्यवसायिक और अर्ध-व्यवसायिक मण्डलियाँ आज भी हैं जो समस्त उत्तरी भारत, और दक्षिण भारत के कुछ भागो मे विभिन्न भाषा क्षेत्रो मे प्रदर्शन करती रहती है। इनमे प्रदर्शित कृष्ण-चरित्र और इनका वैष्णव काव्य समग्र भारतीय सस्कृति का ऐसा अभिन्न अग है कि किसी भी भौगोलिक और भाषा-क्षेत्र मे, और किसी प्रकार के दर्शक-समाज को नाट्य-प्रेक्षणा का रस लेने मे कोई बाधा नही होती।

प्रस्तुत लेख मे रास-लीला के आधुनिक रूप के नाट्य-विधान और उसकी इन्ही रूढियो और प्रदर्शन नियमो की सक्षिप्त विवेचना की जा रही है।

प्रदर्शन की दृष्टि से प्रत्येक लीला-नाटक के तीन[1] मुख्य खण्ड किये जा सकते

---

[1] लेखक ने रास-लीला के जो तीन भेद बतलाये हैं वह वास्तव में दो ही हैं। 'नित्य रास' और 'लीला-प्रसग'। 'नित्य-रास' जो रास का प्रमुख अग है दो भागों में सम्पन्न होता है। पहले नृत्य होता है और बाद में 'सगीत'। रास के गायन को 'सागीत' नहीं कहा जा सकता। सागीत' शब्द भगतों (नौटकी या स्वांगों) के गायन के लिए प्रयुक्त होता है। —सम्पादक

हैं—नित्य रास, सागीत और लीला-प्रसग। प्रथम खण्ड मे तो राधा और कृष्ण आसन पर विराजते है, गोपियाँ उनके रूप-शृगार का बखान करती हैं और लीलाओ के कुछ सामान्य पद गाती है, और उसके पश्चात् समाजी (कोरस) एक-एक करके कृष्ण-चरित्र की महिमा या रूप-वर्णना और अनेक लीलाओ और कथा-प्रसगो से सम्बन्धित पद और काव्य-रचनाओ का पाठ और गायन करते हैं। यह काव्य-साहित्य अष्टछाप और वैष्णव-धारा के दूसरे भक्त कवियो के अतिरिक्त और अन्य अनेक साधनो से भी जुटाया जाता है। सागीत आरम्भ होता है। इस खण्ड मे प्राय कृष्ण अथवा कोई गोपी भक्ति, उपासना, कर्म आदि गम्भीर दार्शनिक विषयो पर प्रवचन करती है और समाजियो द्वारा भक्ति-काव्य का मुक्त अबाध गायन होता है, जिसमे कृष्ण-चरित्र और लीला विशेष से इतर अनेक दूसरे प्रसगो का समावेश होता है। लीला-नाटको का यह खण्ड इस गेय-नाटक के लिए बडे ही उपयुक्त वातावरण की सृष्टि करता है, दर्शकगण भाव-विभोर होकर मुख्य लीला के अवलोकन के लिए तैयार हो जाते हैं। इन नाटको का अन्तिम खण्ड कृष्ण-जीवन का कोई विशेष प्रसग अथवा घटना होती है। लीला-नाटक के इन तीनो खण्डो मे पदो के चुनाव मे इतनी विविधता है और उनके क्रम मे एक ऐसी नाटकीय सार्थकता है कि उनमे नाटक का कथा-सूत्र क्रमश आगे बढता चलता है और दर्शको का प्रेक्षणाभाव विघटित नही होता।

रास-लीलाओ मे गाये जाने वाले पद और विभिन्न छन्दो मे रचा हुआ काव्य जहाँ सगीत की दृष्टि से विविधतापूर्ण और नाटकीय है वहाँ पात्रो द्वारा उसके निवेदन की शैली और नियम भी बडे ही रोचक और नाट्य-गर्भित है। सबसे बडी विशेषता यह है कि इन नाटको के सवादो को कई-कई बार कई तरह से दोहराया जाता है और उनके जोड़-तोड़ के कई रूप और कई शैलियाँ है।

प्रदर्शन-युक्तियो की दृष्टि से भी इन लीला-नाटको के कुछ छोटे-छोटे बडे ही रोचक नियम है, और उनकी इस रूप के साथ पूरी सगति है और उनमे बडी नाटकीय शक्ति निहित है। इनका कोई निर्मित, औपचारिक रगमच नही होता। दो तीन चौकी, कुर्सियाँ या तख्त डालकर स्वरूपो के बैठने के लिए एक आसन बना दिया जाता है। उसके सामने का स्थान नाटक का अभिनय-क्षेत्र बन जाता है, इसी मे सम-धरातल पर समाजी और दर्शक बैठ जाते है। लीलाओ के इस अनौपचारिक रगमच का विधान-मन्दिरो के गर्भ-गृह और प्रागणो से लेकर नदी-किनारे के घाटो, फुलबगियो और गृहस्थो के आँगनो और बरामदो मे कही भी किया जा सकता है। रगमच की इस अनौपचारिकता से ही इस नाटक के प्रदर्शन की युक्तियाँ, नियम और रुढियाँ निकलती है। अभिनय-क्षेत्र मे किसी प्रकार की रग-सज्जा अथवा दृश्य उपकरणो द्वारा उसे घटना-स्थल की विशिष्टि नही दी जाती। अत घर से कुञ्ज, अथवा कुञ्जो से यमुना तट, या गोकुल से मथुरा किसी प्रकार के स्थान परिवर्तन मे कोई कठिनाई नही होती और नाटक का सूत्र भी नही टूटता। पात्र सहज ही पद का गायन करते हुए स्थान अथवा प्रसग के परिवर्तन की सूचना दे देते है, और क्षण भर में घटनास्थल बदल जाता है और इससे दर्शको की प्रतीति को भी कोई आघात नही पहुँचता। लीला-नाटको की रगस्थली की इस अनौपचा-

रगस्थली मे चले आते है और अपने सवादो का गायन करके और प्रसग की एक कडी पूरी करके चले जाते है। नाटको की कथाएँ परिचित होने के कारण ही पात्रो के पारस्परिक सम्बन्धो और घटना-स्थल के सम्बन्ध मे किसी प्रकार के परिचय और भूमिका की आवश्यकता नही पडती और इस रगमच के रूपगत स्वभाव के कारण ही ऐसा सम्भव होता है कि कथा-प्रसगो की छोटी-छोटी कडियाँ एक दूसरे के बाद ऐसी निर्बाध गति से जुड जाती हैं कि वस्तु-सरचना मे किसी प्रकार की कमजोरी नही आने पाती और न दर्शको की ही प्रतीति खण्डित होती है। कभी-कभी तो नयी नाटकीय स्थिति का समावेश सहसा ही कर दिया जाता है और क्षण भर मे ही वह स्थिति नाटकीय-कथा के पूर्वापर से जुड जाती है।

रास-लीलाओ मे जो एक साधारण पर्दे—किसी चादर या शाल का प्रयोग किया जाता है—उसकी भी कई तरह की नाटकीय उपयोगिताएँ है और कई प्रकार के अवसरो पर उसका प्रयोग होता है। कथाकली नाटको के समान ही रास-लीलाओ का पर्दा कोई भी दो रासधारी या समाजी या रसिक दर्शक हाथो मे पकडकर आसन के सामने तान कर खडे हो जाते हैं। कभी तो उसके पीछे अगले दृश्य के पात्र आकर खडे हो जाते हैं, कभी झाँकी सजायी जाती है, और कभी आगामी दृश्य सजाया जाता है। कभी-कभी पात्रो के प्रवेश प्रस्थान के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार पर्दे का प्रयोग नाटक के कथा-व्यापार के परिवर्तन को व्यक्त करने की एक बडी सहज युक्ति है। झाँकी सजाने और उसका प्रदर्शन करने के समय तो इस पर्दे की बहुत बडी नाटकीय उपयोगिता है। झाँकियो के अवसर पर ही प्राय कृष्ण और राधा की रूप-वर्णना और उनके चरित्र-सम्बन्धी अन्य सामान्य पदो का भी गायन होता है। अत एक तो इन झाँकियो का भावात्मक और कलात्मक महत्त्व है, क्योकि वे दर्शको के रसानुभव को गहन करती हैं और दूसरे उनका व्यवहार-मूलक महत्त्व भी है, क्योकि उनका लीलाओ के रूप-विधान मे बहुत महत्त्वपूर्ण योग-दान है। यदि कभी ये झाँकियाँ घटना-स्थल बदलने का भी सकेत देती है तो कभी कथा के विकास और उसके नये चरण की सूचना देती है और कभी कोई प्रसग चित्रवत् प्रस्तुत करती हैं। इस प्रकार झाँकियो के विधान द्वारा लीला-नाटको को एक प्रकार से छोटे-छोटे नाट्य-खण्डो अथवा दृश्यो मे विभाजित कर लिया जाता है, और पूरी लीला का ऐसा विभाजन ही नाटको को ऐसी प्रेक्षणीयता और दृश्य-गत् रुचिरता देता है।

प्रदर्शन की दृष्टि से लीला-नाटको की अन्तिम और सबसे बडी विशेषता, जो कि शायद सभी प्रकार के लोक-नाटको की विशेषता है, यह है कि उसमे दर्शको का सक्रिय सहयोग है। वह लीला के दर्शक मात्र ही नही रहते बल्कि रगस्थली मे बैठे हुए पात्रो की अनेक मुद्राओ और सवादो के प्रत्युत्तर दे-देकर और बीच-बीच मे कृष्ण और राधा की जय-जय करते हुए जैसे दर्शक के साथ-साथ स्वय नाटक के पात्र भी बन जाते हैं। जिस सहजता और आत्मीयता के साथ स्वरूप दर्शको के बीच से होकर रगस्थली मे आते-जाते हैं उससे भी पात्रो मे दर्शको के तादात्म्य भाव को प्रश्रय मिलता है और उनकी अभिनयात्मक वृत्ति सहज ही प्रेरित होकर नाटक का रस लेती है। इस प्रकार रास-लीला का भारतीय नाट्य परम्परा मे अपना एक विशिष्ट स्थान है।

रगस्थली मे चले आते हैं और अपने सवादो का गायन करके और प्रसग की एक कडी पूरी करके चले जाते हैं। नाटको की कथाएँ परिचित होने के कारण ही पात्रो के पारस्परिक सम्बन्धो और घटना-स्थल के सम्बन्ध मे किसी प्रकार के परिचय और भूमिका की आवश्यकता नही पडती और इस रगमच के रूपगत स्वभाव के कारण ही ऐसा सम्भव होता है कि कथा-प्रसगो की छोटी-छोटी कडियाँ एक दूसरे के बाद ऐसी निर्बाध गति से जुड जाती हैं कि वस्तु-सरचना मे किसी प्रकार की कमजोरी नही आने पाती और न दर्शको की ही प्रतीति खण्डित होती है। कभी-कभी तो नयी नाटकीय स्थिति का समावेश सहसा ही कर दिया जाता है और क्षण भर मे ही वह स्थिति नाटकीय-कथा के पूर्वापर से जुड जाती है।

रास-लीलाओ मे जो एक साधारण पर्दे—किसी चादर या शाल का प्रयोग किया जाता है—उसकी भी कई तरह की नाटकीय उपयोगिताएँ है और कई प्रकार के अवसरो पर उसका प्रयोग होता है। कथाकली नाटको के समान ही रास-लीलाओ का पर्दा कोई भी दो रासधारी या समाजी या रसिक दर्शक हाथो मे पकडकर आसन के सामने तान कर खडे हो जाते है। कभी तो उसके पीछे अगले दृश्य के पात्र आकर खडे हो जाते हैं, कभी झाँकी सजायी जाती है, और कभी आगामी दृश्य सजाया जाता है। कभी-कभी पात्रो के प्रवेश प्रस्थान के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार पर्दे का प्रयोग नाटक के कथा-व्यापार के परिवर्त्तन को व्यक्त करने की एक बडी सहज युक्ति है। झाँकी सजाने और उसका प्रदर्शन करने के समय तो इस पर्दे की बहुत बडी नाटकीय उपयोगिता है। झाँकियो के अवसर पर ही प्राय कृष्ण और राधा की रूप-वर्णना और उनके चरित्र-सम्बन्धी अन्य सामान्य पदो का भी गायन होता है। अत एक तो इन झाँकियो का भावात्मक और कलात्मक महत्त्व है, क्योकि वे दर्शको के रसानुभव को गहन करती है और दूसरे उनका व्यवहार-मूलक महत्त्व भी है, क्योकि उनका लीलाओ के रूप-विधान मे बहुत महत्त्वपूर्ण योग-दान है। यदि कभी ये झाँकियाँ घटना-स्थल बदलने का भी सकेत देती हैं तो कभी कथा के विकास और उसके नये चरण की सूचना देती हैं और कभी कोई प्रसग चित्रवत् प्रस्तुत करती हैं। इस प्रकार झाँकियो के विधान द्वारा लीला-नाटको को एक प्रकार से छोटे-छोटे नाट्य-खण्डो अथवा दृश्यो मे विभाजित कर लिया जाता है, और पूरी लीला का ऐसा विभाजन ही नाटको को ऐसी प्रेक्षणीयता और दृश्य-गत् रुचिरता देता है।

प्रदर्शन की दृष्टि से लीला-नाटको की अन्तिम और सबसे बडी विशेषता, जो कि शायद सभी प्रकार के लोक-नाटको की विशेषता है, यह है कि उसमे दर्शको का सक्रिय सहयोग है। वह लीला के दर्शक मात्र ही नही रहते बल्कि रगस्थली मे बैठे हुए पात्रो की अनेक मुद्राओ और सवादो के प्रत्युत्तर दे-देकर और बीच-बीच मे कृष्ण और राधा की जय-जय करते हुए जैसे दर्शक के साथ-साथ स्वय नाटक के पात्र भी बन जाते हैं। जिस सहजता और आत्मीयता के साथ स्वरूप दर्शको के बीच से होकर रगस्थली मे आते-जाते हैं उससे भी पात्रो मे दर्शको के तादात्म्य भाव को प्रश्रय मिलता है और उनकी अभिनयात्मक वृत्ति सहज ही प्रेरित होकर नाटक का रस लेती है। इस प्रकार रास-लीला का भारतीय नाट्य परम्परा मे अपना एक निश्चित स्थान है।

रगस्थली मे चले आते है और अपने सवादो का गायन करके और प्रसग की एक कडी पूरी करके चले जाते हैं। नाटको की कथाएँ परिचित होने के कारण ही पात्रो के पारस्परिक सम्बन्धो और घटना-स्थल के सम्बन्ध मे किसी प्रकार के परिचय और भूमिका की आवश्यकता नही पडती और इस रगमच के रूपगत स्वभाव के कारण ही ऐसा सम्भव होता है कि कथा-प्रसगो की छोटी-छोटी कडियाँ एक दूसरे के बाद ऐसी निर्बाध गति से जुड जाती हैं कि वस्तु-सरचना मे किसी प्रकार की कमजोरी नही आने पाती और न दर्शको की ही प्रतीति खण्डित होती है। कभी-कभी तो नयी नाटकीय स्थिति का समावेश सहसा ही कर दिया जाता है और क्षण भर मे ही वह स्थिति नाटकीय-कथा के पूर्वापर से जुड जाती है।

रास-लीलाओ मे जो एक साधारण पर्दे—किसी चादर या शाल का प्रयोग किया जाता है—उसकी भी कई तरह की नाटकीय उपयोगिताएँ हैं और कई प्रकार के अवसरो पर उसका प्रयोग होता है। कथाकली नाटको के समान ही रास-लीलाओ का पर्दा कोई भी दो रासधारी या समाजी या रसिक दर्शक हाथो मे पकडकर आसन के सामने तान कर खडे हो जाते हैं। कभी तो उसके पीछे अगले दृश्य के पात्र आकर खडे हो जाते हैं, कभी झाँकी सजायी जाती है, और कभी आगामी दृश्य सजाया जाता है। कभी-कभी पात्रो के प्रवेश प्रस्थान के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार पर्दे का प्रयोग नाटक के कथा-व्यापार के परिवर्त्तन को व्यक्त करने की एक बडी सहज युक्ति है। झाँकी सजाने और उसका प्रदर्शन करने के समय तो इस पर्दे की बहुत बडी नाटकीय उपयोगिता है। झाँकियो के अवसर पर ही प्राय कृष्ण और राधा की रूप-वर्णना और उनके चरित्र-सम्बन्धी अन्य सामान्य पदो का भी गायन होता है। अत एक तो इन झाँकियो का भावात्मक और कलात्मक महत्त्व है, क्योकि वे दर्शको के रसानुभव को गहन करती है और दूसरे उनका व्यवहार-मूलक महत्त्व भी है, क्योकि उनका लीलाओ के रूप-विधान मे बहुत महत्त्वपूर्ण योग-दान है। यदि कभी ये झाँकियाँ घटना-स्थल बदलने का भी सकेत देती है तो कभी कथा के विकास और उसके नये चरण की सूचना देती हैं और कभी कोई प्रसग चित्रवत् प्रस्तुत करती हैं। इस प्रकार झाँकियो के विधान द्वारा लीला-नाटको को एक प्रकार से छोटे-छोटे नाट्य-खण्डो अथवा दृश्यो मे विभाजित कर लिया जाता है, और पूरी लीला का ऐसा विभाजन ही नाटको को ऐसी प्रेक्षणीयता और दृश्य-गत् रुचिरता देता है।

प्रदर्शन की दृष्टि से लीला-नाटको की अन्तिम और सबसे बडी विशेषता, जो कि शायद सभी प्रकार के लोक-नाटकों की विशेषता है, यह है कि उसमे दर्शको का सक्रिय सहयोग है। वह लीला के दर्शक मात्र ही नही रहते बल्कि रगस्थली मे बैठे हुए पात्रो की अनेक मुद्राओ और सवादो के प्रत्युत्तर दे-देकर और बीच-बीच मे कृष्ण और राधा की जय-जय करते हुए जैसे दर्शक के साथ-साथ स्वय नाटक के पात्र भी बन जाते है। जिस सहजता और आत्मीयता के साथ स्वरूप दर्शको के बीच से होकर रगस्थली मे आते-जाते हैं उससे भी पात्रो मे दर्शको के तादात्म्य भाव को प्रश्रय मिलता है और उनकी अभिनयात्मक वृत्ति सहज ही प्रेरित होकर नाटक का रस लेती है। इस प्रकार रास-लीला का भारतीय नाट्य परम्परा मे अपना एक विशिष्ट स्थान है।

रास सम्बन्धी कुछ प्राचीन अनुश्रुतियाँ

स्वामी लाडिली शरण द्विवेदी, रासधारी, वृन्दावन

व्रज में रास-लीला के पुनर्गठन के उपरान्त गाँव करहला उसका केन्द्र बना और यहाँ के उदय करण और खेम करण नामक ब्राह्मणो का इस रगमच के निर्माण मे वडा योग रहा यह पहले कहा जा चुका है। रास का यह रगमच भक्ति-युग मे वडा लोकप्रिय सिद्ध हुआ, और रास के माध्यम से भक्त वृन्द व्रज विहारी के प्रत्यक्ष दर्शन का सुख प्राप्त करते रहे। रास से सम्वन्धित अनेक अनुश्रुतियाँ इसका प्रमाण हैं, जिनमे से कुछ का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है। नाभादास जी ने अपनी 'भक्तमाल' मे भी ऐसी रास सम्वन्धी घटनाओ की चर्चा भक्तो के प्रसग मे की है।

चन्दा डाकू का हृदय परिवर्त्तन—कहा जाता है कि औरगजेव के शासन-काल की वात है उस समय रास-लीला मे उदय करण जी के पुत्र विक्रम जी कृष्ण के स्वरूप वनते थे। वे वडे मनहरण और प्रभावशाली थे। एक दिन एक धनाढ्य भक्त के यहाँ वडे समारोह से रासलीला का आयोजन था। श्री राधा कृष्ण तथा सखियो के लिए नख-शिख रत्न-जटित स्वर्ण आभूषण तथा जरी के वस्त्र धारण कराये गये। यह समाचार तत्कालीन चन्दा नाम के डाकू ने सुना। उसके मुँह मे पानी भर आया और वह वहुत से हथियार वन्द साथियो को लेकर उस वस्ती मे आ पहुँचा। लोगो मे हलचल मच गई। सव अपने प्राण लेकर भाग खडे हुए। शोर गुल सुन कर रास मे विराजमान विक्रम जी (श्री ठाकुर जी के स्वरूप) ने जव यह हाल देखा तो उन्होने उस लीला कराने वाले भक्त सेठ से इसका कारण पूछा। उसने कहा—'महाराज ! सुना है डाकू लूट-मार करने आ रहे हैं।' सुनते ही श्री श्याम सुन्दर वोले, 'आने दो'—इतने ही मे चन्दा डाकू निर्भय सीधा सिंहासन के समीप जा पहुँचा, और ज्यो ही उसने आभूषणो पर हाथ डालना चाहा, तव उन्ही विक्रम जी (श्री कृष्ण स्वरूप) ने उसका हाथ पकड कर मुँह पर ऐसा प्रहार किया कि वह चारो खाने चित्त जा पडा। उसके होश-हवास गुम हो गये, उसके साथी यह तमाशा देख भयभीत पत्थर की मूर्त्ति की भाँति वही के वही खडे रह गये। जव डाकू को होश आया तो उसने विक्रम जी के चरण-कमलो को प्रेम-भाव से जाकर पकड लिया, और उसके नेत्रो से अश्रुधारा वहने लगी। उस दिन से अपने हथियारो को श्री चरणो मे पटक कर वह सदा के लिए भगवत-भक्त वन गया।

राजा जयसिंह का महल हवेली निर्माण—इस लोक प्रसिद्ध घटना के बाद कई रास-मण्डलियो का निर्माण हो गया और जहाँ-तहाँ रास-रस वितरण होने लगा। परन्तु उन मण्डलियो मे भाव-भक्ति की मर्यादाओ के विपरीत आचरण भी होने लगे। यह देख कर कुछ सन्तो और भक्तो के हृदय मे बडी ठेस पहुँची। उनमे से कुछ लोगो ने जयपुर जाकर महाराजा जयसिंह जी से रास-धारियो की शिकायत की, क्योकि उस समय ब्रज के मांट गाँव तक जयपुर का ही राज्य था। कुछ सोच समझ कर महाराज जयसिंह वृन्दावन आये, और रास-धारियो की परीक्षा लेने का निर्णय किया। उन्होने समस्त रास-मण्डलियो को रास के लिए आमन्त्रण दिया और श्री जमुना जी के किनारे विशाल मण्डप निर्माण करा कर एक अठारह हाथ ऊँचा सिंहासन बनवाया। श्री वृन्दावन मे चीर घाट के निकट आज भी जयसिंह के घेरे के नाम से जो प्रसिद्ध स्थान है वहाँ पर अलग-अलग मण्डलियाँ अपने-अपने स्वरूपो का रास के लिए शृंगार कर ही रही थी कि एक बूढा व्रजवासी अठारह हाथ ऊँचा सिंहासन देख कर अपनी मण्डली के शृंगार घर मे आकर रोने लगा, जहाँ उसका पोता श्री श्याम-सुन्दर स्वरूप का शृंगार कर रहा था। अपने बाबा का रुदन देख कर वह बालक बोला, 'बाबा, क्या बात है ! क्यो रोते हो ?' कई बार टालने पर जब उस बालक स्वरूप ने दु खित होकर कहा, 'बाबा ! यदि तुम रोने का कारण नही बतलाते तो मैं भी शृंगार नही करता।' यह देख बूढे बाबा ने सोचा कि लाला समझेगा कोई घर का मर गया है। वह कहने लगा, "बेटा ! आज हमारे रास के मुकुट की लाज कौन बचायेगा ? मै उसके लिए रोता हूँ। राजा ने १८ हाथ ऊँचा सिंहासन परीक्षा के लिए बनवाया है।" यह सुनते ही बाल स्वरूप श्याम सुन्दर बनने वाले उस बालक को आवेश आ गया। वे बोले, "बाबा ! मै उस सिंहासन पर चढूँगा तू चिन्ता मत कर।" यह सुन कर बाबा को कुछ सन्तोष हुआ, रास लीला के पण्डाल मे छमाछम नूपुरो की ध्वनि गूँजने लगी। राधा कृष्ण के कई स्वरूप बहुत सी सखियो सहित सुसज्जित वस्त्र आभूषणो से अलकृत अपनी मनहरण छटा माधुरी द्वारा दर्शको के नयनो को रसाप्लावित करते हुए सिंहासनो पर आकर विराजमान हो गये, परन्तु उसी एक मण्डली के श्री जुगल सरकार नही पधारे जिसके ठाकुर जी ने अपने बाबा को आश्वासन दिया था कि मैं सिंहासन पर चढूँगा। राजा जयसिंह ने अपने चाकरो को उनको बुलाने की आज्ञा की, किन्तु वे तब भी नही आये। अन्त मे महामन्त्री जब बुलाने गये तब श्री कृष्ण ने कहा—"राजा स्वय बुलाने क्यो नही आते ?" उन्होने महाराज से आकर कहा, तब जयसिंह जी स्वय उन्हे लेने गये। राजा ने श्री चरणो मे साष्टाग प्रणाम किया, और हाथ जोड कर रास-लीला मे पधारने की विनती की।

श्री राधा कृष्ण सखियो सहित, राजा के साथ चल दिये। रास-स्थली मे पहुँचते ही श्री कृष्ण तुरन्त उछल कर उस ऊँचे सिंहासन पर जा विराजे। दर्शको के नेत्रो से आनन्दाश्रु झलकने लगे, फूलो की वर्षा होने लगी। श्री राधिका रानी ने वहाँ पहुँच कर जब मचान की ओर देखा तब राजा जयसिंह जी हाथ जोड कर कहने लगे, "हे कोमलागी श्री लाडिली जी ! आप सीढी पर धीरे-धीरे चरण रख

कर ही इस सिंहासन पर चढ़िये। यह श्री श्याम सुन्दर जी तो गोप बालक है। वन-वन में वृक्षों पर उछल-कूद करते हुए गाय चराने का इनका स्वभाव है।"

राजा जयसिंह को तो केवल चमत्कार ही देखना था लीला तो करानी थी ही नहीं, अतः वह आयोजन समाप्त हो गया। महाराज जयसिंह ने मचान पर विराजे हुए श्री युगल सरकार के श्री चरणों में साष्टांग प्रणाम किया, और शृंगार-गृह मे पधारने की प्रार्थना की। सीढ़ी द्वारा ज्यों ही श्री युगलस्वरूप उतरे, महाराजा जयसिंह जी ने श्री श्याम सुन्दर जी को कंधे पर बैठा लिया और जोधपुर नरेश किशन सिंह ने जो महाराजा के साथ थे श्री स्वामिनी जी को अपने कंधों पर चढ़ाया। दोनों राज्यों के दो दीवानों ने चारों सखियों को कंधे पर चढ़ाया और महाराज के पीछे चल दिये।

जयपुर नरेश का शरीर कुछ स्थूल था। वे धीरे-धीरे चल रहे थे। श्री लाडिली जी व सखियों को आगे निकलते देख, श्री श्याम सुन्दर ने जयसिंह जी मे चरण मारते हुए कहा, 'हमारा घोड़ा बड़ा कमजोर है, इससे चला भी नहीं जाता।' यह सुनकर नरेश तो आनन्द मे विभोर हो गये परन्तु श्री ठाकुर जी के बाबा के हृदय मे सम्राट् के क्रोधित होने की आशंका उत्पन्न हो गई, और अपने पौत्र श्री कृष्ण की ओर आँख निकाल कर देखने लगे। नरेश को यह बात बुरी लगी और उन्होंने उस भोले व्रजवासी को सामने से हट जाने का आदेश दिया।

रसिक भक्त जयसिंह जी वहीं खड़े रहे। श्याम सुन्दर फिर बोले, "अब क्यों नहीं चलते ?" राजा ने विनय की "श्री महाराज! यह घोड़ा अड़ियल है, अड़ गया है, बिना दूसरी एँड़ खाये नहीं चलेगा।" श्री लाल जी ने दूसरे चरण से प्रेम-प्रहार किया, तब वह उनको लेकर शृंगार-गृह मे आये और उन्हें उतार कर चरण कमलों को शीश पर धारण किया और करबद्ध विनती की कि "प्रभु मेरे लिये कुछ सेवा का आदेश कीजिए।" त्रिभुवन मोहन चुप रहे। राजा बार-बार यही प्रार्थना करने लगे, तब अपनी वंशी राजा के मस्तक पर मार कर ठाकुर जी बोले, "खबरदार, आज से जो किसी की परीक्षा ली।"

इतना कहते ही श्री कृष्ण मूर्च्छित हो गये, उनको अन्तर-गृह मे ले जाकर पलँग पर लिटा दिया गया। कुछ समय पश्चात् जब वे चैतन्य हुए, भावावेश उतरा, तब उन्होंने अपना शृंगार उतरवाया। जयपुर नरेश जयसिंह जी उस मण्डली के स्वामी जी से बोले, "आप कुछ माँगिये मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?" भगवत विश्वास परायण सन्तोषी व्रजवासियों ने कहा कि "हम आपसे कुछ नहीं चाहते पर यदि आपकी ऐसी ही इच्छा है तो हमारे कच्चे मकानों को पक्के करा दीजिये।"

राजा ने यह स्वीकार करके एक गाँव रास-मण्डली की भेंट किया और करहला गाँव मे पक्के महल व हवेली बनवाने के लिए चूना-पत्थर आदि सामान इकट्ठा होने लगा परन्तु कुछ दिनों उपरान्त ही जयसिंह नरेश परलोक सिधार गये, अतः यह कार्य अपूर्ण ही रह गया। आज भी वहाँ खोदने पर नींवों से पत्थर निकलते हैं, तथा करहला के रास-धारियों के वंशज आज भी महल व हवेली वालों के नाम से प्रसिद्ध हैं।

श्री विट्ठल विपुल जी का शरीर-त्यागन—श्री वृन्दावन मे स्वामी हरिदास जी के परम धाम पधारने पर उनके प्रिय शिष्य श्री विट्ठल विपुल जी श्री गुरु-चरणो के वियोग मे अति शोकाकुल रहते थे और निरन्तर नेत्रो से विरह जल बहाया करते थे। किसी को देखने को जी नही करता था। इसलिए उन्होंने नेत्रो पर पट्टी बाँध ली थी।

उन्ही दिनो एक समय रास-लीला का समारोह श्री वृन्दावन के माननीय महानुभावो ने अति उत्साह से कराया। उसमे श्री विट्ठल विपुल जी को भी कुछ आदरणीय सन्त-महन्त आमन्त्रण करने उनके पास गये। सकोचवश वे उनका बुलावा न टाल सके, और रास-लीला मे आ विराजे। रास-रस की घटायें उमडने लगी, मुकुट की लटक और चन्द्रिका की चटक के साथ कुण्डलो की झमक मे दर्शको के मन-मीन तैरने लगे। श्री श्यामा-श्याम गलबाही दिये सखी-मण्डल मे नृत्य कर रहे थे। नूपुरो के मन हरण बोल, बीच-बीच मे वशी की मद भरी सुरीली ध्वनि और सखियो तथा श्री जुगल सरकार के कोकिल कठो द्वारा गान, तान और अलापो की विचित्र माधुरी के सागर मे रसिक भ्रमर मतवाले हो झूम रहे थे कि अचानक नृत्य-गति मन्द हो गई और श्री लाड़िली जी श्याम सुन्दर जी से बोली, "प्रीतम! विट्ठल विपुल की पट्टी नयनो से खुलवादो।" श्री लाल जी बोले, "आप ही कृपा कीजिये।"

नृत्य करते हुए श्री किशोरी जी ने जाकर विट्ठल विपुल जी का हाथ पकड़ लिया और बोली, "पट्टी खोलो।" उन्होने प्रेम-विभोर होकर, "स्वामिनी जी, अब छोडना नही," कहते हुए दूसरे हाथ से पट्टी खोली और देखा कि श्यामा-श्याम के रोम-रोम से महा काति की गौर-श्याम किरणें छिटक रही है। मधुर रस-सागर मृग नयनो मे करुणा की घटाएँ छा रही हैं और पास ही उनके सर्वस्व स्वामी हरिदास जी श्री ललिता सखी स्वरूप मे विराजमान हैं। विट्ठल विपुल जी के नेत्र स्तब्ध हो गये। प्रेमाश्रु की सरिता बहने लगी और उनका भौतिक शरीर श्री युगल चरणो मे गिर पडा। जय-जय-कार की मगल-ध्वनि गूँज उठी।[1]

राजा रामराय द्वारा पुत्री की भेंट—राजा खेम्हाल के बेटे राजा रामराय जी परम भक्त थे। एक दिवस राधेलाल रूपराम करहला ग्राम की मण्डली द्वारा महल मे शरद-पूर्णिमा की चाँदनी मे ऐसा सुधा-रस उमडा कि रामराय जी को साक्षात् कोटि चन्द्र कान्ति विलज्जित श्री श्याम सुन्दर की छवि दृष्टिगोचर हो गई, वह प्रेम विह्वल हो गये। उन्होने एक ब्राह्मण मन्त्री से सलाह की कि "क्या वस्तु भेंट करनी चाहिये?" उस मन्त्री ने कहा "महाराज, जो आपको सबसे प्यारी हो।" राजा ने कहा, "मुझे मेरी बेटी सबसे प्यारी है।" राजा ने महल मे जाकर शृगार से युक्त बेटी को लाकर श्री लाल जी के चरणो मे भेंट की। साथ मे इतना धन भी दिया कि वह श्री कृष्ण का स्वरूप उस राज्य-कन्या के साथ विवाह करके आनन्द से जीवन वितीत करता रहे। परन्तु मण्डली के स्वामी जी ने धन स्वीकार करके नरेश से कहा,

---

१ 'भक्तमाल' में भी इस घटना का उल्लेख है जैसा पहले भी कहा जा चुका है।

—सम्पादक

"आपकी कन्या को हमने ठाकुर जी की वहू मान लिया, फिर भी हम ब्राह्मण हैं आप क्षत्री हैं, इसलिए आप इसका लौकिक विवाह किसी क्षत्री के साथ ही कर दें।"

कैदियों की मुक्ति—आज से लगभग ६५ वर्ष पूर्व की घटना है करहला ग्राम के स्वामी विहारीलाल की मण्डली दतिया राज्य मे रास कर रही थी। भवानी सिंह जी राजा थे। राज दरबार मे रासलीला हुआ करती थी। राजा का श्री कृष्ण जी से सखा भाव था। एक दिन भवानी सिंह जी को हँसी सूझी, और उन्होने सिंहासन पर विराजित ठाकुरजी से कुछ विचित्र परिहास की वात कह डाली जिसको सुनकर श्री लाल जी को आवेश आ गया और पास मे पडी गुलाब की छड़ी द्वारा राजा को पीटना शुरू कर दिया, नरेश वहाँ से महल मे भाग चले और वह भी उनको मारते-मारते महल मे चले गये। राजा कही जाकर छिप गये। उस समय रास मे व्रज के सुप्रसिद्ध सगीतज्ञ ग्वारिया वावा जी भी थे। लीला इस प्रकार समाप्त हो गई। मत्री आदि को इस प्रकार राजा को मारना बुरा लगा। यह देख कर राजा ने उनसे कहा, "तुम लोग इस वात को नही समझ सकते इसलिए श्याम सुन्दर को तुम कुछ न कहना। मेरी उनकी जो वात है उसे मैं जानूँ या वह।"

दूसरे दिन फिर रास के लिए स्वरूप जव विराजे तव राजा भवानीसिंह ने आकर साष्टाग दण्डवत की, और विनय करने लगा तथा उनसे कुछ सेवा की प्रार्थना की। श्री कृष्ण जी को स्मरण हो आया कि जल के पास जव हम शौच जाते हैं, तव तीन आजन्म कैदी हमसे प्रार्थना करते है। आज अच्छा अवसर है, सो राजा से वोले—"उन तीनो आजन्म कैदियो को छोड़ दिया जाय और हमको कुछ नहीं चाहिए।"

राजा ने तुरन्त कैदियो को रिहा कर दिया। वाद मे नरेश ने उन ठाकुर जा की जीवन पर्यन्त के लिए आजीविका वाँध दी और स्वामी जी के पुत्र राधा कृष्ण तथा गोवर्धन को अपने राज्य मे दीवान की पदवी प्रदान की।

कालिया-दमन लीला—उसी समय मे एक वार एक भक्त ने श्री यमुना जी के किनारे पर रासानुकरण कराया। काली नाग नाथने की लीला आरम्भ हुई। श्री श्याम सुन्दर कमर से फेंट कसने लगे—उस भक्त ने लोगो से पूछा, "क्या श्री कृष्ण यमुना मे कूदेंगे, जो कमर कसते है।" यह वात श्री लाल के कान मे पड़ गई। वह वोले "हाँ कूदेंगे" और तुरन्त यमुना मे कूद पडे। सव दर्शक सोच मे पड गये। थोडी देर मे श्री कृष्ण एक वड़ा भारी साँप जो ८-१० आदमियो से भी न उठे लेकर वाहर निकले। उस भक्त ने उस समय श्याम सुन्दर का ऐसा विचित्र प्रकाश देखा कि आँखो मे चकाचौंध छा गई और वह मूर्छित होकर गिर पड़ा। श्री लाल जी ने सर्प यमुना जी मे ही डाल दिया। जव इस भक्त को होश आया तो वह श्री चरणो से लिपट गया और घरवार त्याग कर भजन मे लीन हो गया।

खड्गसेन का लीला-प्रवेश—खड्गसेन जी कायस्थ ग्वालियर के रहने वाले और रास के वडे प्रेमी थे। रासलीला वड़े उत्साह से कराया करते थे। शरद् पूर्णिमा

कर ही इस सिंहासन पर चढ़िये। यह श्री श्याम सुन्दर जी तो गोप बालक हैं। वन-वन में वृक्षो पर उछल-कूद करते हुए गाय चराने का इनका स्वभाव है।"

राजा जयसिंह को तो केवल चमत्कार ही देखना था लीला तो करानी थी ही नहीं, अत वह आयोजन समाप्त हो गया। महाराज जयसिंह ने मचान पर विराजे हुए श्री युगल सरकार के श्री चरणो में साष्टाग प्रणाम किया, और शृगार-गृह मे पधारने की प्रार्थना की। सीढी द्वारा ज्यो ही श्री युगलस्वरूप उतरे, महाराजा जयसिंह जी ने श्री श्याम सुन्दर जी को कधे पर बैठा लिया और जोधपुर नरेश किशन सिंह ने जो महाराजा के साथ थे श्री स्वामिनी जी को अपने कधो पर चढाया। दोनो राज्यो के दो दीवानो ने चारो सखियो को कधे पर चढाया और महाराज के पीछे चल दिये।

जयपुर नरेश का शरीर कुछ स्थूल था। वे धीरे-धीरे चल रहे थे। श्री लाडिली जी व सखियो को आगे निकलते देख, श्री श्याम सुन्दर ने जयसिंह जी मे चरण मारते हुए कहा, 'हमारा घोड़ा बड़ा कमजोर है, इससे चला भी नही जाता।' यह सुनकर नरेश तो आनन्द मे विभोर हो गये परन्तु श्री ठाकुर जी के बाबा के हृदय मे सम्राट् के क्रोधित होने की आशका उत्पन्न हो गई, और अपने पौत्र श्री कृष्ण की ओर आँख निकाल कर देखने लगे। नरेश को यह बात बुरी लगी और उन्होने उस भोले व्रजवासी को सामने मे हट जाने का आदेश दिया।

रसिक भक्त जयसिंह जी वही खडे रहे। श्याम सुन्दर फिर बोले, "अब क्यो नही चलते ?" राजा ने विनय की "श्री महाराज ! यह घोड़ा अड़ियल है, अड़ गया है, बिना दूसरी ऐंड़ खाये नही चलेगा।" श्री लाल जी ने दूसरे चरण से प्रेम-प्रहार किया, तब वह उनको लेकर शृगार-गृह मे आये और उन्हे उतार कर चरण कमलो को शीश पर धारण किया और करबद्ध विनती की कि "प्रभु मेरे लिये कुछ सेवा का आदेश कीजिए।" त्रिभुवन मोहन चुप रहे। राजा बार-बार यही प्रार्थना करने लगे, तब अपनी बशी राजा के मस्तक पर मार कर ठाकुर जी बोले, "खबरदार, आज से जो किसी की परीक्षा ली।"

इतना कहते ही श्री कृष्ण मूच्छित हो गये, उनको अन्तर-गृह मे ले जाकर पलँग पर लिटा दिया गया। कुछ समय पश्चात् जब वे चैतन्य हुए, भावावेश उतरा, तब उन्होने अपना शृगार उतरवाया। जयपुर नरेश जयसिंह जी उस मण्डली के स्वामी जी से बोले, "आप कुछ माँगिये मै आपकी क्या सेवा करूँ ?" भगवत विश्वास परायण सन्तोषी व्रजवासियो ने कहा कि "हम आपसे कुछ नही चाहते पर यदि आपकी ऐसी ही इच्छा है तो हमारे कच्चे मकानो को पक्के करा दीजिये।"

राजा ने यह स्वीकार करके एक गाँव रास-मण्डली की भेंट किया और करहला गाँव मे पक्के महल व हवेली बनवाने के लिए चूना-पत्थर आदि सामान इकट्ठा होने लगा परन्तु कुछ दिनो उपरान्त ही जयसिंह नरेश परलोक सिधार गये, अत यह कार्य अपूर्ण ही रह गया। आज भी वहाँ खोदने पर नीवो से पत्थर निकलते है, तथा करहला के रास-धारियो के वशज आज भी महल व हवेली वालो के नाम से प्रसिद्ध हैं।

श्री विट्ठल विपुल जी का शरीर-त्यागन—श्री वृन्दावन मे स्वामी हरिदास जी के परम धाम पधारने पर उनके प्रिय शिष्य श्री विट्ठल विपुल जी श्री गुरु-चरणो के वियोग मे अति शोकाकुल रहते थे और निरन्तर नेत्रो से विरह जल बहाया करते थे। किसी को देखने को जी नही करता था। इसलिए उन्होंने नेत्रो पर पट्टी बाँध ली थी।

उन्ही दिनो एक समय रास-लीला का समारोह श्री वृन्दावन के माननीय महानुभावो ने अति उत्साह से कराया। उसमे श्री विट्ठल विपुल जी को भी कुछ आदरणीय सन्त-महन्त आमन्त्रण करने उनके पास गये। सकोचवश वे उनका बुलावा न टाल सके, और रास-लीला मे आ विराजे। रास-रस की घटायें उमडने लगी, मुकुट की लटक और चन्द्रिका की चटक के साथ कुण्डलो की झमक मे दर्शको के मन-मीन तैरने लगे। श्री श्यामा-श्याम गलबाही दिये सखी-मण्डल मे नृत्य कर रहे थे। नूपुरो के मन हरण बोल, बीच-बीच मे बशी की मद भरी सुरीली ध्वनि और सखियो तथा श्री जुगल सरकार के कोकिल कठो द्वारा गान, तान और अलापो की विचित्र माधुरी के सागर मे रसिक भ्रमर मतवाले हो झूम रहे थे कि अचानक नृत्य-गति मन्द हो गई और श्री लाड़िली जी श्याम सुन्दर जी से बोली, "प्रीतम ! विट्ठल विपुल की पट्टी नयनो से खुलवादो।" श्री लाल जी बोले, "आप ही कृपा कीजिये।"

नृत्य करते हुए श्री किशोरी जी ने जाकर विट्ठल विपुल जी का हाथ पकड़ लिया और बोली, "पट्टी खोलो।" उन्होने प्रेम-विभोर होकर, "स्वामिनी जी, अब छोड़ना नही," कहते हुए दूसरे हाथ से पट्टी खोली और देखा कि श्यामा-श्याम के रोम-रोम से महा काति की गौर-श्याम किरणें छिटक रही हैं। मधुर रस-सागर मृग नयनो में करुणा की घटाएँ छा रही हैं और पास ही उनके सर्वस्व स्वामी हरिदास जी श्री ललिता सखी स्वरूप मे विराजमान हैं। विट्ठल विपुल जी के नेत्र स्तब्ध हो गये। प्रेमाश्रु की सरिता बहने लगी और उनका भौतिक शरीर श्री युगल चरणो मे गिर पडा। जय-जय-कार की मगल-ध्वनि गूँज उठी।[1]

राजा रामराय द्वारा पुत्री की भेंट—राजा खेम्हाल के बेटे राजा रामराय जी परम भक्त थे। एक दिवस राधेलाल रूपराम करहला ग्राम की मण्डली द्वारा महल मे शरद-पूर्णिमा की चाँदनी मे ऐसा सुधा-रस उमडा कि रामराय जी को साक्षात् कोटि चन्द्र कान्ति विलज्जित श्री श्याम सुन्दर की छवि दृष्टिगोचर हो गई, वह प्रेम विह्वल हो गये। उन्होने एक ब्राह्मण मन्त्री से सलाह की कि "क्या वस्तु भेंट करनी चाहिये ?" उस मन्त्री ने कहा "महाराज, जो आपको सबसे प्यारी हो।" राजा ने कहा, "मुझे मेरी बेटी सबसे प्यारी है।" राजा ने महल मे जाकर शृगार से युक्त बेटी को लाकर श्री लाल जी के चरणो मे भेंट की। साथ मे इतना धन भी दिया कि वह श्री कृष्ण का स्वरूप उस राज्य-कन्या के साथ विवाह करके आनन्द से जीवन वितीत करता रहे। परन्तु मण्डली के स्वामी जी ने धन स्वीकार करके नरेश से कहा,

---

१ 'भक्तमाल' में भी इस घटना का उल्लेख है जैसा पहले भी कहा जा चुका है।

—सम्पादक

"आपकी कन्या को हमने ठाकुर जी की बहू मान लिया, फिर भी हम ब्राह्मण हैं आप क्षत्री है, इसलिए आप इसका लौकिक विवाह किसी क्षत्री के साथ ही कर दें।"

कैदियों की मुक्ति—आज से लगभग ६५ वर्ष पूर्व की घटना है करहला ग्राम के स्वामी बिहारीलाल की मण्डली दतिया राज्य मे रास कर रही थी। भवानी सिंह जी राजा थे। राज दरबार मे रासलीला हुआ करती थी। राजा का श्री कृष्ण जी से सखा भाव था। एक दिन भवानी सिंह जी को हँसी सूझी, और उन्होने सिंहासन पर विराजित ठाकुरजी से कुछ विचित्र परिहास की बात कह डाली जिसको सुनकर श्री लाल जी को आवेश आ गया और पास मे पडी गुलाब की छड़ी द्वारा राजा को पीटना शुरू कर दिया, नरेश वहाँ से महल मे भाग चले और वह भी उनको मारते-मारते महल मे चले गये। राजा कही जाकर छिप गये। उस समय रास मे ब्रज के सुप्रसिद्ध सगीतज्ञ ग्वारिया बाबा जी भी थे। लीला इस प्रकार समाप्त हो गई। मत्री आदि को इस प्रकार राजा को मारना बुरा लगा। यह देख कर राजा ने उनसे कहा, "तुम लोग इस बात को नही समझ सकते इसलिए श्याम सुन्दर को तुम कुछ न कहना। मेरी उनकी जो बात है उसे मैं जानूँ या वह।"

दूसरे दिन फिर रास के लिए स्वरूप जब विराजे तब राजा भवानीसिंह ने आकर साष्टाग दण्डवत की, और विनय करने लगा तथा उनसे कुछ सेवा की प्रार्थना की। श्री कृष्ण जी को स्मरण हो आया कि जल के पास जब हम शौच जाते हैं, तब तीन आजन्म कैदी हमसे प्रार्थना करते है। आज अच्छा अवसर है, सो राजा से बोले—"उन तीनो आजन्म कैदियो को छोड दिया जाय और हमको कुछ नही चाहिए।"

राजा ने तुरन्त कैदियो को रिहा कर दिया। बाद मे नरेश ने उन ठाकुर जी की जीवन पर्यन्त के लिए आजीविका बाँध दी और स्वामी जी के पुत्र राधा कृष्ण तथा गोवर्धन को अपने राज्य मे दीवान की पदवी प्रदान की।

कालिया-दमन लीला—उसी समय मे एक बार एक भक्त ने श्री यमुना जी के किनारे पर रासानुकरण कराया। काली नाग नाथने की लीला आरम्भ हुई। श्री श्याम सुन्दर कमर से फेंट कसने लगे—उस भक्त ने लोगो से पूछा, "क्या श्री कृष्ण यमुना मे कूदेंगे, जो कमर कसते है।" यह बात श्री लाल के कान मे पड़ गई। वह बोले "हाँ कूदेंगे" और तुरन्त यमुना मे कूद पडे। सब दर्शक सोच मे पड़ गये। थोडी देर मे श्री कृष्ण एक बड़ा भारी साँप जो ८-१० आदमियो से भी न उठे लेकर बाहर निकले। उस भक्त ने उस समय श्याम सुन्दर का ऐसा विचित्र प्रकाश देखा कि आँखो मे चकाचौंध छा गई और वह मूर्छित होकर गिर पडा। श्री लाल जी ने सर्प यमुना जी मे ही डाल दिया। जब इस भक्त को होश आया तो वह श्री चरणो से लिपट गया और घरबार त्याग कर भजन मे लीन हो गया।

खड्गसेन का लीला-प्रवेश—खड्गसेन जी कायस्थ ग्वालियर के रहने वाले और रास के बडे प्रेमी थे। रासलीला बड़े उत्साह से कराया करते थे। शरद् पूर्णिमा

श्री विट्ठल विपुल जी का शरीर-त्यागन—श्री वृन्दावन मे स्वामी हरिदास जी के परम धाम पधारने पर उनके प्रिय शिष्य श्री विट्ठल विपुल जी श्री गुरु-चरणो के वियोग मे अति शोकाकुल रहते थे और निरन्तर नेत्रो से विरह जल बहाया करते थे। किसी को देखने को जी नही करता था। इसलिए उन्होने नेत्रो पर पट्टी बाँध ली थी।

उन्ही दिनो एक समय रास-लीला का समारोह श्री वृन्दावन के माननीय महानुभावो ने अति उत्साह से कराया। उसमे श्री विट्ठल विपुल जी को भी कुछ आदरणीय सन्त-महन्त आमन्त्रण करने उनके पास गये। सकोचवश वे उनका बुलावा न टाल सके, और रास-लीला मे आ विराजे। रास-रस की घटायें उमडने लगी, मुकुट की लटक और चन्द्रिका की चटक के साथ कुण्डलो की झमक मे दर्शको के मन-मीन तैरने लगे। श्री श्यामा-श्याम गलबाही दिये सखी-मण्डल मे नृत्य कर रहे थे। नूपुरो के मन हरण बोल, बीच-बीच मे बशी की मद भरी सुरीली ध्वनि और सखियो तथा श्री जुगल सरकार के कोकिल कठो द्वारा गान, तान और अलापो की विचित्र माधुरी के सागर मे रसिक भ्रमर मतवाले हो झूम रहे थे कि अचानक नृत्य-गति मन्द हो गई और श्री लाड़िली जी श्याम सुन्दर जी से बोली, "प्रीतम ! विट्ठल विपुल की पट्टी नयनो से खुलवादो।" श्री लाल जी बोले, "आप ही कृपा कीजिये।"

नृत्य करते हुए श्री किशोरी जी ने जाकर विट्ठल विपुल जी का हाथ पकड़ लिया और बोली, "पट्टी खोलो।" उन्होने प्रेम-विभोर होकर, "स्वामिनी जी, अब छोड़ना नही," कहते हुए दूसरे हाथ से पट्टी खोली और देखा कि श्यामा-श्याम के रोम-रोम से महा काति की गौर-श्याम किरणें छिटक रही हैं। मधुर रस-सागर मृग नयनो में करुणा की घटाएँ छा रही हैं और पास ही उनके सर्वस्व स्वामी हरिदास जी श्री ललिता सखी स्वरूप मे विराजमान हैं। विट्ठल विपुल जी के नेत्र स्तब्ध हो गये। प्रेमाश्रु की सरिता बहने लगी और उनका भौतिक शरीर श्री युगल चरणो मे गिर पडा। जय-जय-कार की मगल-ध्वनि गूँज उठी।[1]

राजा रामराय द्वारा पुत्री की भेंट—राजा खेम्हाल के बेटे राजा रामराय जी परम भक्त थे। एक दिवस राधेलाल रूपराम करहला ग्राम की मण्डली द्वारा महल मे शरद-पूर्णिमा की चाँदनी मे ऐसा सुधा-रस उमडा कि रामराय जी को साक्षात् कोटि चन्द्र कान्ति विलज्जित श्री श्याम सुन्दर की छवि दृष्टिगोचर हो गई, वह प्रेम विह्वल हो गये। उन्होने एक ब्राह्मण मन्त्री से सलाह की कि "क्या वस्तु भेंट करनी चाहिये ?" उस मन्त्री ने कहा "महाराज, जो आपको सबसे प्यारी हो।" राजा ने कहा, "मुझे मेरी बेटी सबसे प्यारी है।" राजा ने महल मे जाकर शृगार से युक्त बेटी को लाकर श्री लाल जी के चरणो मे भेंट की। साथ मे इतना धन भी दिया कि वह श्री कृष्ण का स्वरूप उस राज्य-कन्या के साथ विवाह करके आनन्द से जीवन वितीत करता रहे। परन्तु मण्डली के स्वामी जी ने धन स्वीकार करके नरेश से कहा,

---

१ 'भक्तमाल' में भी इस घटना का उल्लेख है जैसा पहले भी कहा जा चुका है।

—सम्पादक

"आपकी कन्या को हमने ठाकुर जी की वहू मान लिया, फिर भी हम ब्राह्मण हैं आप क्षत्री है, इसलिए आप इसका लौकिक विवाह किसी क्षत्री के साथ ही कर दें।"

कैदियों की मुक्ति—आज से लगभग ६५ वर्ष पूर्व की घटना है करहला ग्राम के स्वामी विहारीलाल की मण्डली दतिया राज्य मे रास कर रही थी। भवानी सिंह जी राजा थे। राज दरवार मे रासलीला हुआ करती थी। राजा का श्री कृष्ण जी से सखा भाव था। एक दिन भवानी सिंह जी को हँसी सूझी, और उन्होने सिंहासन पर विराजित ठाकुरजी से कुछ विचित्र परिहास की वात कह डाली जिसको सुनकर श्री लाल जी को आवेश आ गया और पास मे पडी गुलाव की छड़ी द्वारा राजा को पीटना शुरू कर दिया, नरेश वहां से महल मे भाग चले और वह भी उनको मारते-मारते महल मे चले गये। राजा कही जाकर छिप गये। उस समय रास मे व्रज के सुप्रसिद्ध सगीतज्ञ ग्वारिया वावा जी भी थे। लीला इस प्रकार समाप्त हो गई। मत्री आदि को इस प्रकार राजा को मारना वुरा लगा। यह देख कर राजा ने उनसे कहा, "तुम लोग इस वात को नही समझ सकते इसलिए श्याम सुन्दर को तुम कुछ न कहना। मेरी उनकी जो वात है उसे मैं जानूँ या वह।"

दूसरे दिन फिर रास के लिए स्वरूप जव विराजे तव राजा भवानीसिंह ने आकर साष्टाग दण्डवत की, और विनय करने लगा तथा उनसे कुछ सेवा की प्रार्थना की। श्री कृष्ण जी को स्मरण हो आया कि जल के पास जव हम शौच जाते है, तव तीन आजन्म कैदी हमसे प्रार्थना करते है। आज अच्छा अवसर है, सो राजा से वोले—"उन तीनो आजन्म कैदियो को छोड़ दिया जाय और हमको कुछ नही चाहिए।"

राजा ने तुरन्त कैदियो को रिहा कर दिया। वाद मे नरेश ने उन ठाकुर जा की जीवन पर्यन्त के लिए आजीविका वाँध दी और स्वामी जी के पुत्र राधा कृष्ण तथा गोवर्धन को अपने राज्य मे दीवान की पदवी प्रदान की।

कालिया-दमन लीला—उसी समय मे एक वार एक भक्त ने श्री यमुना जी के किनारे पर रासानुकरण कराया। काली नाग नाथने की लीला आरम्भ हुई। श्री श्याम सुन्दर कमर से फेंट कसने लगे—उस भक्त ने लोगो से पूछा, "क्या श्री कृष्ण यमुना मे कूदेंगे, जो कमर कसते है।" यह वात श्री लाल के कान मे पड़ गई। वह वोले "हाँ कूदेंगे" और तुरन्त यमुना मे कूद पडे। सव दर्शक सोच मे पड गये। थोडी देर मे श्री कृष्ण एक वड़ा भारी साँप जो ८-१० आदमियो से भी न उठे लेकर वाहर निकले। उस भक्त ने उस समय श्याम सुन्दर का ऐसा विचित्र प्रकाश देखा कि आँखो मे चकाचौंध छा गई और वह मूर्छित होकर गिर पडा। श्री लाल जी ने सर्प यमुना जी मे ही डाल दिया। जव इस भक्त को होश आया तो वह श्री चरणो से लिपट गया और घरवार त्याग कर भजन मे लीन हो गया।

खड्गसेन का लीला-प्रवेश—खड्गसेन जी कायस्थ ग्वालियर के रहने वाले और रास के वडे प्रेमी थे। रासलीला बड़े उत्साह से कराया करते थे। शरद् पूर्णिमा

पर रास कराने का उनका दृढ नेम था। एक बार रास-विलास की ऐसी अनुपम नृत्य-माधुरी उमडी कि श्री राधा कृष्ण की बाँकी-झाँकी के महा प्रकाश मे उनके नयन प्राण उलझे ही रह गये। देह गेह की सुध न रही। खङ्गसेन जी सदा के लिए नित्य-विहार रास-रस मे लीन हो गये।

इस प्रकार रास-लीला-अनुकरण मे अनेक चमत्कार समय-समय पर होते देखे और सुने गये है।

बसत-रास का एक पद

[राग बसत]

राजत श्री वृन्दाबन श्री नव निकुज ।
तहाँ मधुप करत अनुराग गुज ॥
गौर-स्याम छबि नवल रास ।
आई ऋतु बसत भयौ हुलास ॥
चवन बदन मथि सुबास ।
वोऊ छिरकत हँसि हँसि कर बिलास ॥
नवल नवल सखी जूथ सँग ।
कर एकनि बीना डफ मृदग ॥
लियें एक गुलाल सुरग रग ।
भये सुरगित बसन सुदेस अग ॥
निर्तत रसिक किसोर जोर ।
छवि निरखि थके चहुँ ओर मोर ॥
वसी रव सुनि श्रवन थोर ।
खग कुरग वँधे प्रेम-डोर ॥
कुमकुम जल कन तन सुदेस ।
फवि रहे कुचित रुचिर केस ॥
"हित ध्रुव" निरखि अनूप वेस ।
कछु कहि न सकत छवि छटा लेस ॥

—हित ध्रुवदास